# कल्याणा



भगवती श्रीगायत्री





ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



वन्दे वन्दनतुष्टमानसमितप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्येकवासं शिवम्। सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष १२ गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, अप्रैल २०१८ ई० पूर्ण संख्या १०९७

#### परशुराम-लक्ष्मण-संवाद

लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु।

卐

卐

Si Si

55

I I	1 3 3 3 3
垢	बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु॥
垢	नाथ करहु बालक पर छोहू।सूध दूधमुख करिअ न कोहू॥
垢	जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना।तौ कि बराबरि करत अयाना॥
垢	। जा सार्वा पाछु अवसार पारहा गुर ग्यु मार्च मन मरहा ।
垢	। कारज कृषा सिंसु संपंक जाना तुम्ह सम साल बार मुन प्याना ॥
垢	राम बचन सनि कछक जडाने।कहि कछ लखन बहरि मसकाने॥
垢	हँमत देखि नम्ब मिम्ब रिम ब्यापी।राम तोर भाता बड पापी॥
55	भीर समीर स्थाप पर पार्टी। कालकरपात प्रसारत राहीं।।
垢	
卐	
垢	लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल।
垢	जेहि बस जन अनुचित करिहं चरिहं बिस्व प्रतिकूल।।
垢	[ श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड ]

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७५	, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, अप्रैल २०१८ ई०			
विषय-सूची				
विषय पृष्ठ-संख्या	विषय पृग	छ-संख्या		
२ - कल्याण	(डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त, एम०ए०, पी-एर् १८- 'मेरे सॉॅंबरे! तेरी कृपा है' (डॉ० श्रीगोपालजी नार [प्रेषक—श्रीनन्दिकशोरजी मित्तल]	सन) २ कता डी०) ३ ३ ३ ३		
– महल नहीं, धर्मशाला२५	३१- मनन करने योग्य <b>७</b> ● <b>──</b>			
१- भगवती श्रीगायत्री (रं २- परशुराम-लक्ष्मण-संवाद ( ३- भगवती श्रीगायत्री (इः ४- राजर्षि भरत ( ५- भक्त जलारामजी ( ६- जटायुका वैकुण्ठगमन (	") करंगा) ")	मुख-पृष १ १		
जिस पातक गति चन्द्र जस्मित जर	७७──── । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥े			
एकवर्षीय शुल्क ₹२५० जय जिशवरूप हरि जय जय विराट् जय जगत्पते विदेशमें Air Mail विषिक US	।। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥	य शुल्क		
आदिसम्पादक — <b>नित्यलीलालीन</b>	द्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़ क लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकार्ग	शित		
website: gitapress.org e-mail: kal	yan@gitapress.org 0923540024	2/244		

संख्या ४ ी कल्याण *निश्चय करो*—मेरे मनमें सदा-सर्वदा मंगलमय मेरा मंगल करते रहते हैं। और जब सर्वशक्तिमान्,

मंगलमय भावोंको देखूँगा। सदा सद्विचार करूँगा, मेरे मुखसे सदा भगवानुकी महिमाको बतानेवाले, सबका

हित करनेवाले, सुख पहुँचानेवाले सत्य, मधुर और पवित्र वचन ही निकलेंगे। निश्चय करो—मैं कभी कोई ऐसा काम नहीं

भगवान् निवास करते हैं। उनके समस्त दिव्य

गुण और भाव मेरे मनमें सदा तरंगित हो रहे

करूँगा, जो श्रीभगवानुकी प्रसन्नताका कारण न हो। सदा उनकी सेवाके लिये ही उनके प्रीतिकर कर्म करूँगा। मेरी इच्छा सदा उन्हीं कर्मोंके करनेकी होगी.

जिनसे भगवान और उन्हींके अभिव्यक्त रूप जगतुके प्राणियोंको सुख होता हो।

नहीं आने दुँगा।

निश्चय करो-मुझे कभी भी सद्विचार तथा

सत्कर्मको छोड़कर अन्य किसी भी विचार तथा कर्मके लिये अवकाश ही नहीं मिलेगा। मन तथा शरीर नित्य भगवानुकी सेवामें ही लगे रहेंगे। एक क्षणका भी

सेवा-वियोग मुझको सहन नहीं होगा।

*निश्चय करो*—मेरा कभी कोई अमंगल नहीं हो सकता, मेरा कभी कोई बुरा नहीं कर सकता;

क्योंकि सभीमें सभी समय मेरे भगवान् ही निवास करते हैं, और मेरे लिये जो कुछ भी, जिस किसीके द्वारा भी

लिये होता है। निश्चय करो-संसारमें मुझको कोई भी मनुष्य

होता है, सब भगवान्के मंगलमय विधानसे मेरे मंगलके

या घटना कभी भी निराश या उदास नहीं कर सकते; क्योंकि मेरे परम सुहृद् भगवान् नित्य स्वाभाविक ही सर्वत्र विराजमान मेरे प्रभु मेरे मंगल-विधानमें संलग्न हैं, तब सफलतामें सन्देहका स्थान ही कहाँ है, जिससे

हैं। अब मैं उनके सिवा मनमें किसी भी अन्य निराशा और उदासीकी सम्भावना हो। वस्तुको और किसी भी बुरे विचार और भावको याद रखो — जब भगवानुके मंगलमय राज्यमें अमंगलको स्थान ही नहीं है, तब अमंगलकी कल्पना निश्चय करो—में सर्वत्र भगवान् और उनके

करके मैं क्यों व्यर्थ ही अमंगलको बुलाऊँ? *निश्चय करो* — जब सभीमें मेरे भगवान भरे हैं, तब सभी मंगलसे ही ओतप्रोत हैं। फिर मैं किसीमें

अमंगलके दर्शन करके इस सत्यका हनन क्यों करूँ? *निश्चय करो* — जब सर्वत्र और सदा मंगल-ही-मंगल और आनन्द-ही-आनन्द है, तब मैं सदा

आनन्दमें ही निमग्न रहँगा। जीवन-मृत्यु, लाभ-हानि, सुख-दु:ख, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा-किसी भी बाहरी अवस्थाका मेरी इस नित्य आनन्दमयी स्थितिपर कोई प्रभाव नहीं पड सकेगा।

*निश्चय करो* — यहाँ जो तुम्हें दोष, दु:ख, अमंगल तथा अशुभ दीखता है, वह इसीलिये है कि तुम सदा सर्वत्र नित्य मंगलमय और आनन्दमय भगवानुको नहीं देख पा रहे हो। यहाँ जो कुछ ऊपरसे दीखता है—वह उन मंगलमय भगवान्के ही विभिन्न छद्मवेष हैं। उन्हींकी

घनस्वरूप भगवान् सदा विराजमान हैं। याद रखो-तुम अश्भकी कल्पना करते हो, इसीसे तुम्हें दु:ख होता है। किसी भी अशुभसे अशुभ

लीलाके विविध दृश्य हैं। इनकी आड्में नित्यानन्द-

कहे और माने जानेवाले पदार्थ और भावमें भी, गहराईसे देखोगे तो, तुम्हें परम शुभ और परम सुखरूप भगवान् छिपे दिखायी देंगे। जहाँ जाओ, जहाँ देखो, उन्हें ही देखनेका प्रयत्न करो। अपनी तीक्ष्ण दुष्टिसे

उन्हींका अनुसन्धान करो। उन्हें पहचान लो और

निहाल हो जाओ। 'शिव'

भगवती श्रीगायत्री आवरणचित्र-परिचय लाल रहता है। ये अपने दो हाथोंमें क्रमश: अक्षसूत्र और

है। यही वेदमाता कहलाती हैं। वास्तवमें भगवती गायत्री नित्यसिद्ध परमेश्वरी हैं। किसी समय ये सविता (सूर्य)-की पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं, इसलिये इनका नाम

एक मानी गयी हैं। इनका विग्रह तपाये हुए स्वर्णके समान

भगवती गायत्री आद्याशक्ति प्रकृतिके पाँच स्वरूपोंमें

प्रादुर्भाव हुआ था। भगवान् सूर्यने इन्हें ब्रह्माजीको समर्पित कर दिया। तभीसे इनकी ब्रह्माणी संज्ञा हुई। कहीं-कहीं सावित्री और गायत्रीके पृथक्-पृथक् स्वरूपोंका भी वर्णन

मिलता है। इन्होंने ही गयों (प्राणों)-का त्राण किया था,

सावित्री पड गया। कहते हैं कि सविताके मुखसे इनका

इसलिये भी इनका गायत्री नाम प्रसिद्ध हुआ। उपनिषदोंमें भी गायत्री और सावित्रीकी अभिन्नताका वर्णन है— गायत्रीमेव सावित्रीमनुब्रुयात्।

गायत्री ज्ञान-विज्ञानकी मूर्ति हैं। ये द्विजातिमात्रकी आराध्या देवी हैं। इन्हें परब्रह्मस्वरूपिणी कहा गया है।

वेदों, उपनिषदों और पुराणादिमें इनकी विस्तृत महिमाका वर्णन मिलता है। गायत्रीकी उपासना तीनों कालोंमें की

जाती है, प्रात:, मध्याह्न और सायं। तीनों कालोंके लिये इनका पृथक्-पृथक् ध्यान है। प्रात:काल ये सूर्यमण्डलके

कमण्डल् धारण करती हैं। इनका वाहन हंस है तथा इनको कुमारी अवस्था है। इनका यही स्वरूप ब्रह्मशक्ति गायत्रीके नामसे प्रसिद्ध है। इसका वर्णन ऋग्वेदमें प्राप्त

होता है। मध्याह्नकालमें इनका युवास्वरूप है। इनकी चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं। इनके चारों हाथोंमें क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पाते हैं। इनका वाहन गरुड है। गायत्रीका यह स्वरूप वैष्णवी शक्तिका परिचायक है। इस स्वरूपको सावित्री भी कहते हैं। इसका वर्णन यजुर्वेदमें

मिलता है। सायंकालमें गायत्रीकी अवस्था वृद्धा मानी गयी है। इनका वाहन वृषभ है तथा शरीरका वर्ण शुक्ल है। ये अपने चारों हाथोंमें क्रमश: त्रिशृल, डमरू, पाश और पात्र धारण करती हैं। ये रुद्रशक्तिकी परिचायिका हैं। इनका वर्णन सामवेदमें प्राप्त होता है।

इस प्रकार गायत्री, सावित्री और सरस्वती एक ही ब्रह्मशक्तिके नाम हैं। इस संसारमें सत्-असत् जो कुछ है, वह सब ब्रह्मस्वरूपा गायत्री ही हैं। भगवान् व्यास कहते हैं—'जिस प्रकार पुष्पोंका सार मधु, दूधका सार घृत और

सार है। गायत्री वेदोंकी जननी और पाप-विनाशिनी हैं. गायत्री-मन्त्रसे बढ़कर अन्य कोई पवित्र मन्त्र पृथ्वीपर नहीं है।'

रसोंका सार पय है, उसी प्रकार गायत्रीमन्त्र समस्त वेदोंका

गायत्री-मन्त्र ऋक्, यजुः, साम, काण्व, कपिष्ठल,

मैत्रायणी, तैत्तिरीय आदि सभी वैदिक संहिताओंमें प्राप्त

होता है, किंतु सर्वत्र एक ही मिलता है। इसमें चौबीस अक्षर हैं। मन्त्रका मूल स्वरूप इस प्रकार है—'**तत्सवितुर्वरेण्यं** भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।'(वाजसनेयी सं० ३। ३५) अर्थात् 'सृष्टिकर्ता प्रकाशमान परमात्माके

प्रसिद्ध वरणीय तेजका (हम) ध्यान करते हैं, वे परमात्मा हमारी बुद्धिको (सतुकी ओर) प्रेरित करें।' याज्ञवल्क्य आदि ऋषियोंने जिस गायत्री भाष्यकी

रचना की है, वह इन चौबीस अक्षरोंकी विस्तृत व्याख्या

मध्यमें विराजमान रहती हैं: उस समय इनके शरीरका रंग है। इस महामन्त्रके द्रष्टा महर्षि विश्वामित्र हैं। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

मानव-जीवनका सर्वोत्तम कार्य संख्या ४ ] मानव-जीवनका सर्वोत्तम कार्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) श्रीभगवान्ने गीतामें कहा है— हुए सबकी सेवा की जाय, तो वह भगवत्सेवा ही होती मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतित सिद्धये। है। मनुष्यके पास विद्या-बुद्धि, धन-दौलत, मकान-जमीन, बल-आयु आदि जो कुछ भी है, वह सब यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः॥ 'सहस्रों मनुष्योंमें कोई एक ही परमात्माकी प्राप्ति-भगवान्की वस्तु है और भगवान्की सेवाके लिये ही रूप सिद्धिके लिये प्रयत्न करता है और प्रयत्न करनेवाले प्राप्त है। जो मनुष्य निष्काम भावसे केवल भगवत्प्रीत्यर्थ सिद्धोंमें कोई एक ही मुझे तत्त्वसे जानता है।' इससे यह भगवान्की सब वस्तुओंको भगवान्के आज्ञानुसार भगवान्की सेवामें लगाता रहता है, वह निरन्तर भगवान्की सिद्ध होता है कि परमात्माकी प्राप्ति मनुष्य-जीवनका पूजा ही करता रहता है, पर ऐसा न करके जो लोग एकमात्र उद्देश्य होनेपर भी भोगोंकी आसक्ति और कामनावश मनुष्य परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें लगता उन वस्तुओंमें अपना ममत्व मानकर उनके द्वारा इस नहीं। पशुकी भाँति आहार-निद्रा, भय-मैथुनादिमें ही नश्वर शरीरको सुख पहुँचाना चाहते हैं और भोग-अपना अमूल्य जीवन खो देता है। यदि कोई उत्तम कर्म वासनाकी पूर्तिके लिये मोहवश झूठ-कपट, दम्भ-छल, करता भी है तो उसका फल भी वह मान-बड़ाई-चोरी-बेईमानी आदि करते हैं, वे तो मानव-जीवनका प्रतिष्ठा ही चाहता है। इसलिये परमात्माकी प्राप्ति सर्वथा दुरुपयोग करते हैं और उन्हें इसका बहुत ही करानेवाला साधन तो प्राय: बनता ही नहीं। यद्यपि मान-बुरा फल भोगनेको बाध्य होना होगा। पाप-कर्म बड़ाई-प्रतिष्ठाके लिये भी उत्तम कर्ममें प्रवृत्त होना करनेवालोंकी अपेक्षा तो सकाम भावसे भगवानुका केवल विषय-सेवनमें ही लगे रहनेकी अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ भजन करनेवाले और देवाराधन करनेवाले भी श्रेष्ठ हैं, है; परंतु मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाकी वृत्ति जब मनुष्यके परंतु उससे आत्मकल्याण नहीं होता, अतएव साधकको अन्दर उत्पन्न हो जाती है और फूलती-फलती है तब निष्काम भावसे ही भगवानुके शरणापन्न होना चाहिये। उसमें दम्भ, पाखण्ड एवं दिखाऊपन आ जाता है। फिर समस्त दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुराचारोंका त्याग करके, यथार्थमें उत्तम कर्मका बनना बन्द हो जाता है। केवल इन्द्रिय और मनका संयम करते हुए तथा प्रेमपूर्वक बाहरसे उत्तम कर्मका दिखावामात्र रह जाता है। इसलिये भगवानुका ध्यान करते हुए भगवानुकी सेवाके भावसे ही समस्त कार्य करने चाहिये। सेवाको परम सौभाग्य मनुष्यको यथासाध्य भगवत्प्राप्तिके लिये ही उत्तम आचरण करना चाहिये। जिसमें लौकिक कामना न हो मानना चाहिये। मनुष्यका शरीर भोगोंकी प्राप्तिके लिये नहीं, भगवानुकी सेवाके लिये ही मिला है। और जो गुप्त भावसे किया जाय, वही उच्चकोटिका साधन होता है। जैसे श्रीभगवान्के नामका जप, वाणीकी प्रात:काल और सायंकाल नियमित रूपसे जो लोग अपेक्षा श्वाससे किया जाय तो श्रेष्ठ होता है। मनसे साधन करते हैं—नित्यकर्म, पूजा-पाठ, सन्ध्या-वन्दन, किया जानेवाला उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ है और भगवान्के जप-ध्यान आदि करते हैं, सो बहुत ही उत्तम है; परंतु ध्यानसहित एवं निरन्तर तथा निष्काम प्रेम-भावसे किया उसमें भी सुधारकी बड़ी आवश्यकता है। अश्रद्धापूर्वक जाय और उसे सर्वथा गुप्त रखा जाय तो वह सर्वश्रेष्ठ केवल बला टालनेके लिये ही या लोगोंको दिखानेके है। इस प्रकारसे किया जानेवाला भगवानुके नामका जप लिये जो लोगोंद्वारा साधन या आराधन आदि किया जाता है, वह उत्तम फल देनेवाला नहीं होता है। श्रद्धा, बहुत शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला होता है। इसीके साथ-साथ प्राणिमात्रमें भगवद्-बुद्धि रखते विश्वास, धैर्य और आदर-बुद्धिसे जो साधन होता है,

भाग ९२

जी ही कर लेना चाहिये। यही मानव-जीवनका सर्वोत्तम

कार्य है। मनुष्यको यह ख्याल करना चाहिये कि मैं कौन

हूँ ? किसलिये आया हूँ, और मेरा क्या कर्तव्य है ? उसे

यह समझना चाहिये कि मैं ईश्वरका अंश हूँ और यह

संसार प्रकृतिका कार्य है। मेरा यहाँ आना ईश्वरको प्राप्त करनेके लिये है, न कि संसारके भोग भोगनेके लिये।

जो मनुष्य दुर्लभ मानव-देह पाकर संसारके भोगोंमें ही अपने जीवनको बिता देता है, वह मूर्ख अमृत त्यागकर

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

विष-पान करता है।

वही उत्तम फलदायक हुआ करता है। उसमें निष्काम दुसरा कोई इस कामको कर देगा, यह सर्वथा असम्भव

भाव हो, विषयोंके प्रति वैराग्य और भगवान्में अनन्य है। संसारके काम तो मनुष्यके मरनेके बाद भी दूसरोंके

अनुराग हो तब तो वह भगवत्प्राप्तिका प्रत्यक्ष साधन बन द्वारा सिद्ध हो सकते हैं। जैसे धन, मकान, जमीन, गहने,

जाता है। अतएव प्रात:काल और सन्ध्याके समय जो कपड़े और रुपये आदि तमाम चीजें उत्तराधिकारी

साधन होता है, उसमें उपर्युक्त प्रकारसे सुधारके साथ-अपने-आप सँभाल लेते हैं, चिन्ता तो करनी है अपने

आत्मकल्याणके लिये. जिसका मरनेके बाद उत्तराधिकारीके

प्रेमसहित निष्काम भावसे भगवत्पृजाके ही रूपमें हों। द्वारा सिद्ध होना सम्भव नहीं है। इस कामको तो जीते-

साथ प्रयत्न ऐसा होना चाहिये कि दिनभरके सारे काम

- क्षमाने दुर्जनको सज्जन बनाया-

रहता था। मार्गसे स्नान करके लौटते हिन्दुओंको वह बहुत तंग किया करता था। दूसरोंको छेड़ने तथा

था। दूसरे लोग तो बुरा-भला भी कुछ कहते थे; किंतु एकनाथ महाराज कभी कुछ बोलते ही नहीं थे। एक दिन जब श्रीएकनाथजी स्नान करके सरायके नीचेसे जा रहे थे, तब उस पठानने उनके ऊपर कुल्ला कर दिया। श्रीएकनाथजी फिर नदी-स्नान करने लौट गये; किंतु जब वे स्नान करके आने लगे, तब पठानने फिर उनपर कुल्ला किया। इस प्रकार कभी-कभी चार-पाँच बार एकनाथजीको स्नान करना पड़ता था।

दक्षिणके पैठण नगरमें गोदावरी-स्नानके मार्गमें ही एक सराय पड़ती थी। उस सरायमें एक पठान

श्रीएकनाथजी महाराज भी उसी मार्गसे गोदावरी-स्नानको जाते थे। वह पठान उन्हें भी बहुत तंग करता

'यह काफिर गुस्सा क्यों नहीं करता?' पठान एक दिन श्रीएकनाथजीके पीछे ही पड़ गया। वह बार-

संतकी क्षमाकी अन्तमें विजय हुई। पठानको अपने कामपर लज्जा आयी। वह एकनाथजीके पैरोंपर

'इसमें क्षमा करनेकी क्या बात है। आपकी कृपासे आज मुझे एक सौ आठ बार गोदावरीका पुण्य

बार कुल्ला करता और एकनाथजी बार-बार गोदावरी-स्नान करने लौटते गये। पूरे एक सौ आठ बार उसने

गिर पड़ा—'आप ख़ुदाके सच्चे बन्दे हैं। मुझे माफ कर दें। अब मैं कभी किसीको तंग नहीं करूँगा।'

रात्रिके समय शयनकालमें सब तरफसे वृत्तियोंको

हटाकर भगवान्के नामका जप और उनके गुण, प्रभाव,

तत्त्वका स्मरण करते हुए शयन करना चाहिये। इस

प्रकारसे जो शयन किया जाता है, वह सोनेका समय भी

साधनकालके समान ही बीतता है; क्योंकि उसमें शयन

जीवनका एक-एक क्षण आत्माके कल्याणके लिये ही लगाये। यह काम उसे स्वयं ही करना है और जबतक

जीवन है तभीतक इसे किया जा सकता है। मरनेके बाद

सतानेमें ही उसे अपना बड्प्पन जान पड़ता था।

कुल्ला किया और उतनी ही बार एकनाथजीने स्नान किया।

स्नान प्राप्त हुआ।' एकनाथजीने उस पठानको आश्वासन दिया।

मनुष्यकी बुद्धिमानी इसीमें है कि वह अपने

और जागरण दोनों भगवान्की स्मृतिमें ही होते हैं।

जिज्ञासा और उसकी प्रक्रिया संख्या ४ ] जिज्ञासा और उसकी प्रक्रिया (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) जाननेकी इच्छाको 'जिज्ञासा' कहते हैं। जिज्ञासा गोयल साहबका नाती पीछे पड़ गया पिक्कूके। उसने उसे ज्ञानकी जननी होती है। जिज्ञासासे ही मनीषियोंने जीव, समझाया कि कैसे अमावास्याके बादसे चन्द्रमा धीरे-धीरे जगत् और ईश्वरके सम्बन्धके तत्त्वोंको जाना, समझा और बढ़कर पूर्णिमापर पूरा होता है और घटते-घटते अमावास्यापर ग्रन्थोंमें उन्हें सँजोया। कर्म-प्रपंचमय यह विश्व तत्त्वतः लुप्त हो जाता है। जिज्ञासासे ही अभिज्ञात हुआ है। जिज्ञासा मानवकी उसके बाद ही पड़ी पूर्णिमा। अब वह बच्चा ताली स्वाभाविक प्रवृत्ति है। फिर भी इसका उद्भावन कतिपय पीटकर बोला—'देख मासी, आज पूरा चन्द्रमा उगा है।' विशेष ढंगसे ही होता है। एकाएक किसी दिन जीवन और जगत्की कोई ( Problems of a child ) 'बच्चेकी समस्याएँ' घटना, कोई समस्या हमें झकझोर देती है। हमारी ट्रेनके पुस्तकमें इंग्लैंडके एक समस्या-मूलक छात्रका वर्णन है। वह जहाँ किसीकी घड़ी पाता, उसे प्राप्तकर पत्थर या सफरमें कोई धक्का लग जाता है, तब हम यह सोचनेके लिये विवश होते हैं कि 'यह क्या हुआ ? कैसे हुआ ? क्यों लोहेके प्रहारसे खोल डालता। उसकी एक ही जिज्ञासा हुआ? क्या करना चाहिये अब?' थी—'इसमें टिक-टिक कौन करता है?' तभी जिज्ञासाका 'श्रीगणेश' होता है। 'क्या? क्यों? बादमें पता लगा कि अपने जन्मके बारेमें उसने कैसे ?' से शुरुआत होती है, जिज्ञासाकी। अपनी माँसे कुछ जिज्ञासा की थी, उसका तर्कसंगत समाधान न मिलनेके बादसे वह घडियोंको तोडने लगा था। १६ जून सन् १९७५की शाम। हमारे बुजुर्ग साथी उसकी जिज्ञासाका सही ढंगसे समाधान कर दिया गया। वर्माजीकी बेटी मीरा आयी थी-हम लोगोंसे मिलने। बस, घड़ी तोड़ना बन्द! महात्मा गांधीने 'अनासक्तियोग' में गीताकी अपनी आनेकी देर नहीं कि उसकी छोटी बेटी दौड पडी, घरके बाहर 'क्यों शोर है उधर ?'—कहती हुई। मामला क्या है ? टीकामें लिखा है—'जिज्ञासाके बिना ज्ञान नहीं होता। यह जाननेके लिये आतुर होकर बाहर दौड़ पड़ना सचमुच ज्ञानवर्धनकी पहली सीढ़ी है—'जिज्ञासा।' जिज्ञासाकी पहली पहचान है। किपलिंगने भी इसी बातको बडे अच्छे ढंगसे प्रस्तुत पाँच-सात मिनटमें वह बच्ची वापस आकर बोली— किया है— 'किरायेदार आपसमें लड़ रहे हैं। ऊपर छतपर जाने देनेका I keep six honest serving men, मामला है।' (They taught me, all I know) घटनास्थलपर जाकर निरीक्षण करना, झगडनेवालोंकी Their names are 'What and Why' and बातें सुनकर उन्हें तौलना, जाँचना, निष्कर्ष निकालना और 'When' पूर्ण समाधान लेकर वापस आना जिज्ञासाकी अन्तिम And 'How' and 'Where' and 'Who.' पहचान है। ''छ: सेवक हैं, मेरे पास, जिनसे मैंने सारा ज्ञान प्राप्त उस दिन हमारी एक भाभी गयी थीं, नगवा। साथमें किया है। उनके नाम हैं—'क्या? क्यों? कब? कैसे? उनका छोटा पोता था। लौटकर बोलीं—'सारे रास्ते यह कहाँ ? और कौन ?'' (—िकपलिंग) बच्चा मेरा दिमाग चाट गया? जिस चीजको देखता इन सेवकोंकी मदद लीजिये और विश्वका सारा उसीको पूछ बैठता—'क्या है यह? क्यों है ऐसा? कैसे ज्ञान-भण्डार आपका है। है यह?' आजिज आ गयी मैं तो इससे।'' शिक्षाशास्त्रियोंने शिक्षणकी अनेक विधियाँ खोज 'पिक्कू मासी! यह चन्द्रमा कभी छोटा हो जाता है, निकाली हैं—आगमन, निगमन, निरीक्षणविधि, प्रयोगात्मक कभी बड़ा, ऐसा क्यों? मुझे समझाइये।' हमारे पड़ोसी विधि। कहीं सरलसे जटिलकी ओर, कहीं ज्ञातसे अज्ञातकी

भाग ९२ ओर, कहीं विशिष्टसे सामान्यकी ओर, कहीं स्थुलसे सुकरात—'इस गाँवमें कोई लडकी नहीं है?' सूक्ष्मकी ओर, कहीं सम्पूर्णसे अंशकी ओर, कहीं विश्लेषणसे देहाती—'क्यों नहीं? जितने लड़के हैं, उतनी ही संश्लेषणकी ओर उन्हें जाना पड़ता है। इन सबमें प्रश्न लडिकयाँ हैं।' विधि—सुकराती-विधिका बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। बच्चोंकी सुकरात—'फिर इन तीस लडकोंके साथ स्कूलमें जिज्ञासा वृत्तिको पनपानेकी ओर पूरा ध्यान देना अध्यापकका तीस लड़िकयाँ क्यों नहीं पढ़ रही हैं?' देहाती—(हँसकर) 'ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता है। कर्तव्य है। सुकराती विधि उसमें बड़ी सहायक होती है। लडिकयाँ लिखना-पढना नहीं सीख सकतीं। यह तो सुकरात था, विश्वका महान् दार्शनिक, परम तार्किक लड़कोंका ही काम है।' और परम ज्ञानी; पर वह कहता यही था कि-सुकरात—'तो तुम लड़के और लड़कियोंके साथ 'All men are fool, I am a wise man; because जुदागाना सलुक (भिन्न व्यवहार) करते हो?' I know that I am a fool.' देहाती—'बेशक! लड़िकयोंकी किसे ख्वाहिश है? 'सभी मनुष्य बेवकुफ हैं, मैं अकेला समझदार हूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं बेवकूफ हूँ - 'मूर्खोऽस्मि'\*। लड़के तो एक चीज हैं।' सुकरात—'लेकिन वे एक ही माँ-बापसे पैदा होते अपनी मुर्खता कोई स्वीकार करता है ? पर सुकरात अपनी तर्क-प्रक्रियासे लोगोंको समझा देता था कि 'सत्य' हैं. हैं न?' क्या है और वे जिसे सत्य मानकर पकड़े बैठे हैं, वह सत्य देहाती—'बेशक!' नहीं, असत्य है।' सुकरात—' और वे तुम्हारे पोतों-नवासोंकी माताएँ होंगी।' देहाती—'जरूरी बात है।' आजसे पचास साल पहले पंजाबके गुडगाँव जिलेके डिप्टी कमिश्नरने सुकरातकी वार्ताका एक उत्तम नमूना सुकरात—'और तुम्हारी माताएँ भी कभी लड़िकयाँ थीं?' इस प्रकार पेश किया था-'एक बार सुकरात एक गाँवमें गया और वहाँके चन्द देहाती—'हाँ!' आदिमयोंसे मिला। 'राम-राम'के बाद उसने उनसे पूछा कि सुकरात—'औरत घरकी जिम्मेवार है।' तुम कौन लोग हो ? उन्होंने जवाब दिया कि 'हम जमींदार देहाती—'हाँ!' हैं।' सुकरातने अपने इर्दगिर्द (आसपास) नजर डाली। उसे सुकरात—'जितनी अच्छी औरत हो, उतना ही गंदगी और गरीबीके सिवा और कुछ दिखायी नहीं दिया। अच्छा घर रहेगा और उतने ही अच्छे और खुश उसका उसने उनसे अपने सवाल करने शुरू कर दिये। शौहर (पति) और उसके बच्चे होंगे।' सुकरात—'जमींदार' वह शख्स है, जो जमीनसे देहाती—'बेशक!' सुकरात—'तो यकीनन (निश्चय ही) तुमको फायदा उठाता है। है न यही बात?' देहाती—'बेशक, यही बात है।' लडकोंसे ज्यादा लडिकयोंका ख्याल रखना चाहिये; क्योंकि अपने घरों, अपने शौहरों और बच्चोंकी सुकरात—'तो तुम मालदार हो न?' देहाती—'मृतलक (सर्वथा) नहीं। बुड्डे! यह तूने बाबत उनके फरायज (कर्तव्य) इस कदर अहम कैसी बेवकूफीकी बात पूछी!' (महत्त्वपूर्ण) हैं।' सुकरात—'तो तुमने शायद यह भी ठीक नहीं कहा देहाती—'हाँ साहब! हम मानते हैं कि तुम फिर कि तुम 'जमींदार' हो।' दुरुस्तीपर हो और हम गलतीपर"। देहाती—(शरमाकर) ऐ सुकरात! हमें माफ करो। जिज्ञासा होती है, नाना प्रकारकी-जीवन और बेशक, हम गलतीपर थे, जब हम बेवकूफीसे अपने जगत्की, आत्मा और परमात्माकी। आवश्यकता इतनी ही आपको 'जमींदार' बतला रहे थे।' है कि वह सच्ची हो, फिर तो वह ज्ञानका मार्ग खोज ही Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

जिज्ञासा और उसकी प्रक्रिया संख्या ४ ] लेगी। चिन्तन, मनन, निदिध्यासन सब उसके रास्तेमें ही मरा-मरा ही कह' फिर क्या था?' पड़ते हैं और एक दिन ऐसा आता है जब— उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥ हृदयग्रन्थिशिछद्यन्ते सर्वसंशयाः। भिद्यते 'तू चिन्मयी माँ है कि पत्थरकी मूरत? मेरी प्रार्थना (मुण्डकोप० २। २। ८) संसारी विषयोंकी जिज्ञासा सांसारिक समृद्धि लाती से तो अबतक पत्थर भी पसीज जाता, पर तेरे कानोंपर है, आध्यात्मिक जिज्ञासा आत्मानन्द। सच्ची और सार्थक जूँ भी नहीं रेंगती। तो ले तेरी ही तलवारसे मैं उड़ा देता जिज्ञासा तो वही है, जिससे मानव अपने अन्तिम लक्ष्य— हूँ, अपनी गर्दन। क्यों नहीं तू दर्शन देती मुझे?' रामकृष्ण तलवार चलाने जा ही रहे थे, अपनी मोक्षकी प्राप्ति कर सके, जिससे उसे आत्मज्ञान हो सके, ब्रह्मज्ञान हो सके। परमेश्वरका, ब्रह्मका यदि ज्ञान न हुआ गर्दनपर, तभी चारों ओर अजस्त्र प्रकाश फूट पड़ा। कहते तो सारा पढना-लिखना व्यर्थ। वेदमें कहा ही है-हैं, मॉॅंने बेटेका हाथ पकड़कर उसकी जिज्ञासाका समाधान अक्षरे परमे व्योमन् ऋचो कर दिया। यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। कभी उठी है, हमारे मानसमें ऐसी जिज्ञासा? उस दिन कुरुक्षेत्रके मैदानमें अर्जुनके मानसमें उठी थी ऐसी वेद किम्चा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते॥ जिज्ञासा । पड़ गया वह कृष्णके चरणोंपर। 'शाधि मां त्वां (ऋग्वेद १। १६४। ३९, अथर्व० ९। १०। १८) प्रपन्नम्' कहकर। किंकर्तव्यविमूढ, कातर, दीन, आर्त, 'जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वरमें सभी देवता और पृथिवी-सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं, आकुल अर्जुन जिज्ञासा कर रहा है—'क्या करूँ मैं? जिसमें सारे वेदोंका मुख्य तात्पर्य है, उस ब्रह्मको जो नहीं कृष्ण! तेरी शरणमें हूँ मैं। तू मुझे समझा। मेरे लिये क्या करना अच्छा होगा? किस बातसे मेरा कल्याण होगा?' जानता, वह ऋग्वेद आदिसे क्या कुछ सुख प्राप्त कर सकता है?' कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः जिज्ञासाके जग जानेपर आदमीसे रहा नहीं जाता, पुच्छामि त्वां धर्मसम्मुढचेताः। उसका समाधान खोजे बिना। वह सब कुछ छोड़कर यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं बृहि तन्मे उसके हलकी तलाशमें निकल पडता है। कोई भी शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ विघ्नबाधा उसका मार्ग नहीं रोक पाती। (गीता २।७) गौतमको दीख गया-एक रोगी, एक वृद्ध और एक सच्चा जिज्ञासु हो, फिर तो उसकी जिज्ञासाका मुर्दा। जिज्ञासा जगी—'क्या मैं भी इसीकी तरह रोगी हो समाधान होकर ही रहेगा। इस शंकाका कोई अर्थ नहीं सकता हूँ, इसीकी तरह बूढ़ा हो सकता हूँ ? इसीकी तरह कि अर्जुनको तो कृष्ण मिल गये थे, हमें कृष्ण कहाँ मृत्युका शिकार हो सकता हूँ?' मिलेंगे? कृष्ण कहीं दूर हैं? वे तो घट-घट व्यापी राजपाट छोड़कर युवती पत्नी तथा दुधमुँहे राहुलको हैं। हम उन्हें अर्जुनकी भाँति कातर होकर पुकारते छोडकर वह चल पडा जंगलकी ओर। उसकी जिज्ञासाका कहाँ हैं? अर्जुनमें जिज्ञासाकी जो पात्रता थी, वह समाधान तब हुआ, जब उसने चार आर्यसत्य पा लिये, पात्रता हममें है? जब उसने मध्यम-मार्ग खोज लिया। ईसा कहते हैं- 'दरवाजा खटखटाओ, वह खुल वाल्मीकिकी जिज्ञासा जगी—'कैसा है, यह मेरा जायगा। पर हमने कभी खटखटाया भी है? करुणामयके जीवन ? दूसरोंको मार-मारकर उनके पैसेपर जीना ? छि: द्वारसे कोई निराश लौटा है कभी? हम उसकी देहलीपर छि: छि:! कैसे होगा मेरा उद्धार?' सिर रखकर रोयें भी तो।' नारदने कहा—'राम-राम कह।' दो करुणा पर वह राम मुँहसे निकले तब तो। कहा—'अच्छा खोलो फाटक मत करो

भगवदृशीन ( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भगवान्के दर्शन इस युगमें भी अवश्य हो सकते अनित्य पदार्थ सुन्दर, सुखरूप और तृप्तिकर मालूम होते हैं, बल्कि अन्यान्य युगोंकी अपेक्षा थोड़े समयमें और हैं और जबतक उनमें रस आता है, तबतक हमारे थोड़े प्रयाससे ही हो सकते हैं। भक्त-शिरोमणि तुलसीदासजी हृदयका पूरा स्थान भगवान्के लिये खाली नहीं। और नरसी मेहता आदि प्रेमियोंको भगवान्के प्रत्यक्ष गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने कहा है-दर्शन हुए हैं, इस बातको मैं सर्वथा सत्य मानता हूँ। यदि जो मोहि राम लागते मीठे। भक्त चाहे तो वह दो मित्रोंकी भाँति एक स्थानपर तौ नवरस-षटरस-रस अनरस है जाते सब सीठे॥ मिलकर भगवान्से परस्पर वार्तालाप भी कर सकता है। (विनय-पत्रिका १६९।१) अवश्य ही भक्तमें वैसी योग्यता होनी चाहिये। भक्तोंके यदि मुझे भगवान् राम प्यारे लगते तो (साहित्यके) शृंगारादि नवों रस और (भोजनके) अम्ल आदि छहों ऐसे अनेक पुनीत चरित इस बातके प्रमाण हैं। भगवानुके शीघ्र दर्शनका सबसे उत्तम उपाय दर्शनकी तीव्र और रस नीरस होकर सीठे (सारहीन-फीके) हो जाते। हम उत्कट अभिलाषा ही है। जिस प्रकार जलमें डूबता हुआ अपने अन्तरमें भगवान्को जितना-सा स्थान देते हैं, मनुष्य ऊपर आनेके लिये परम व्याकुल होता है, उसी उतना-सा उसका फल भी हमें प्राप्त होता है, परंतु प्रकारकी परम व्याकुलता यदि भगवद्दर्शनके लिये हो तो जबतक हम अपने हृदयका पूरा आसन उस हृदयेश्वरके भगवानुका दर्शन होना कोई बड़ी बात नहीं। व्याकुलता लिये सजाकर तैयार नहीं करते, जबतक हमारे अन्त:करणमें बनावटी न होकर असली होनी चाहिये। किसीका अनवरत और निरन्तर अट्ट तैलधाराकी भाँति भगवद्भावका स्रोत नहीं बहता, तबतक उसके लिये व्याकुलता नहीं एकलौता पुत्र मर रहा हो या किसीकी सैकडों वर्षोंसे बनी हुई इज्जत जाती हो, उस समय मनमें जैसी हो सकती और जबतक हम व्याकुल नहीं होते, तबतक

स्वाभाविक और निष्कपट व्याकुलता होती है, वैसी व्याकुलता परमात्माके दर्शनके लिये जिस परम भाग्यवान् भक्तके अन्तरमें उत्पन्न होती है, उसको दर्शन दिये बिना भगवान् कभी नहीं रह सकते। ऐसी व्याकुलता तभी होती है, जबिक वह भक्त संसारके समस्त पदार्थींसे परमात्माको बडा समझता है, इस लोक और परलोकके समस्त भोगोंको अत्यन्त तुच्छ और नगण्य समझकर केवल एक परम प्यारे श्यामसुन्दरके लिये अपने जीवन, धन, ऐश्वर्य, मान, लोक-लज्जा, लोकधर्म और वेदधर्म सबको समर्पण कर चुकता है। देवर्षि नारदजीने भक्तिका स्वरूप वर्णन करते हुए कहा है-तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति। (नारदभक्तिसूत्र १९) 'अपने समस्त कर्म भगवानुको अर्पण कर देना

और उन्हें भूलते ही परम व्याकुल होना भक्ति है।'

जबतक जगत्के भोगोंकी इच्छा है, जबतक जगत्के

भगवान् भी हमारे लिये व्याकुल नहीं होते, क्योंकि भगवान्की यह एक शर्त है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४। ११)

'जो मुझको जैसे भजते हैं, मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ।' जब भक्त प्रेममें तन्मय होकर मतवालेकी तरह घर-बार, स्त्री-पुत्र, लोक-परलोक, हर्ष-शोक, मान-अपमान आदि सबका विसर्जनकर उस परमात्माके लिये परम व्याकुल होता है, एक क्षणभरके विछोहसे भी जो जलसे अलग की हुई मछलीके समान छटपटाने लगता है, भिक्तमती गोपियोंकी भाँति जिसके प्राण

विरह-वेदनासे व्याकुल हो उठते हैं, उसको भगवान्के दर्शन अत्यन्त शीघ्र हो सकते हैं, परंतु हमलोगोंमें वैसी

अनन्य व्याकुलता प्राय: नहीं है। इसीलिये दर्शनमें भी

विलम्ब हो रहा है। हमलोग धन-संतान और मान-

कीर्तिके लिये जितना जी-तोड परिश्रम और सच्चे मनसे

संख्या ४ ] भगवदृर्शन \* समझनेके लिये उन्हें कभी अवसर नहीं मिला। प्रयत्न करते हैं, जितना छटपटाते हैं, उतना परमात्माके लिये क्या अपने जीवनभरमें कभी किसी दिन भी हमने इसमें कोई संदेह नहीं कि इन नेत्रोंकी सफलता नित्य प्रयत्न किया है या हम छटपटाते हैं? तुच्छ धन-मानके अतृप्तरूपसे उस नवीन नीलनीरद श्यामसुन्दरकी विश्व-लिये भटकते और रोते फिरते हैं। क्या परमात्माके लिये विमोहिनी रूपमाधुरीका दर्शन करनेमें ही है। परंतु जबतक व्याकुल होकर सच्चे मनसे हमने कभी एक भी आँसू भगवत्कृपासे इन नेत्रोंको दिव्यभाव नहीं प्राप्त होता, तबतक गिराया है ? इस अवस्थामें हम कैसे कह सकते हैं कि ये नेत्र उस रूपछटाके दर्शनसे वंचित ही रहते हैं। नेत्रोंको 'परमात्माके दर्शन नहीं होते।' हमारे मनमें परमात्माके दिव्य बनाकर उन्हें सार्थक करनेका 'सिद्धमार्ग' उपर्युक्त दर्शनकी लालसा ही कहाँ है? हमने तो अपना सारा मन 'परम व्याकुलता' ही है। जिस महानुभावके हृदयमें अनित्य सांसारिक विषयोंके कूड़े-करकटसे भर रखा है। श्रीकृष्णदर्शनकी तीव्रतम विरहाग्नि जल रही है, वह तो जोरकी भूख या प्यास लगनेपर क्या कभी कोई स्थिर सर्वथा स्तुतिका पात्र है। विरहाग्नि प्राय: बाहर नहीं निकला रह सकता है ? परंतु हमारी भोग-लिप्सा और भगवान्के करती और जब कभी वियोग-वेदना सर्वथा असह्य होकर प्रति उदासीनता इस बातको सिद्ध करती है कि हमलोगोंको बाहर फूट निकलती है, तब वह उसके सारे पाप-तापोंको भगवानुके लिये जोरकी भूख या प्यास नहीं लगी। जिस तुरंत जलाकर उसे प्रेममें पागल बना देती है। उस समय दिन वह भूख लगेगी, उस दिन भगवानुको छोडकर वह भक्त—अनन्य प्रेममें मतवाला भक्त व्रजगोपियोंकी दूसरी कोई वस्तु हमें नहीं सुहायेगी। उस दिन हमारा भाँति सब कुछ भूलकर उस प्राणाधिक मनमोहनके दर्शनके चित्त सब ओरसे हटकर केवल उसीके चिन्तनमें तल्लीन लिये दौड़ता है और अपनी सारी शक्ति और सारा उत्साह हो जायगा। जिस प्रकार विशाल साम्राज्यके प्राप्त हो लगाकर उसको पुकारता है। बस, इसी अवस्थामें उसे जानेपर साधारण कौड़ियोंके तुच्छ व्यापारसे स्वाभाविक भगवान्के दर्शन प्राप्त होते हैं। दर्शन उसी रूपमें होते हैं, ही मन हट जाता है, उसी प्रकार जगत्के बड़े-से-बड़े जिस रूपमें वह दर्शन करना चाहता है एवं व्यवहार, भोग हमें तुच्छ और नीरस मालूम होने लगेंगे, उस समय बर्ताव या वार्तालाप भी प्राय: उसी प्रकारका होता है कि हम अनायास ही कहने लगेंगे— जिस प्रकार उसने पहले चाहा है। इस जगकी कोई वस्तु न हमें सुहाती। ऐसी स्थितिको प्राप्त होनेके लिये साधकको चाहिये पल-पलमें श्यामल मूर्ति स्मरण है आती॥ कि पहले वह सत्संगके द्वारा भगवान्के अतुलनीय महत्त्वको श्रीभगवान्के परम मधुर और परम आनन्दस्वरूप कुछ समझे और उनके निरन्तर नामजप तथा ध्यानके होनेपर भी हमारा उनकी ओर पूरा आकर्षण नहीं है, द्वारा अपने अन्तरमें उनके प्रति कुछ प्रेम उत्पन्न करे। इसका कारण यही है कि हमने उनके महत्त्वको ज्यों-ज्यों उसका हृदय भगवत्प्रेमसे भरता जायगा, त्यों-भलीभाँति समझा नहीं है, इसीलिये अमृतको छोडकर ही-त्यों वहाँसे विषय हटते चले जायँगे। यों करते-करते हम रमणीय विषयोंके विषभरे लड्डुओंके लिये दिन-जिस दिन वह अपना हृदयासन केवल परमात्माके लिये रात भटकते हैं और उन्हें खा-खाकर बारंबार मृत्युको सजा सकेगा, उसी दिन और उसी क्षणमें उसके हृदयमें प्राप्त होते हैं। भगवान्के दर्शन दुर्लभ नहीं, दुर्लभ है परम व्याकुलता उत्पन्न होगी और वह व्याकुलता अत्यन्त उनके दर्शनकी दम्भशून्य और एकान्त लालसा! वे तीव्र होकर भगवान्के हृदयमें भी भक्तोंको दर्शन देनेके भगवान् जो नित्य और सत्य हैं, हर समय हर स्थानमें लिये वैसी ही व्याकुलता उत्पन्न कर देगी। इसके बाद व्यापक हैं, किसी एक युगविशेषमें उनके दर्शन न हों, तत्काल ही वह शुभ समय प्राप्त होगा, जिसमें भक्त और यह बात कैसे मानी जा सकती है। ऐसा कहनेवाले लोग भगवानुका परस्पर प्रत्यक्ष मिलन होगा और उससे भूमि या तो श्रद्धासे रहित हैं या भगवानुकी महिमाका भाव पावन हो जायगी।

चेतनाका प्रकाश (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल) चेतनाका प्रकाश जिस ओर जाता है, उसी ओर पदार्थोंकी इच्छाओंके रूपमें एक अचेतन मनकी सृष्टि आलोक हो जाता है और जिस ओर उसका प्रकाश नहीं होती है। जो व्यक्ति जितना ही बहिर्मुखी है, उसकी जाता, उस ओर अन्धकार रहता है। चेतनाके प्रकाशमें सांसारिक पदार्थोंकी इच्छाएँ उतनी ही प्रबल होती हैं। इन दो विशेषताएँ हैं—एक, वह पदार्थका ज्ञान कराता है ग्रन्थियोंके कारण मनुष्यका आन्तरिक स्वत्व दुखी हो और दूसरे, वह उसे प्रिय बनाता है। उससे जिस ओर जाता है। वह फिर चेतनाके प्रकाशको अपने-आपके पास हमारी चेतना जाती है अर्थात् जिन वस्तुओंकी ओर हम बुलानेका उपाय रचता है। रोगकी उत्पत्ति अपने-आपकी ध्यान देते हैं, वे न केवल हमें सभी प्रकारसे ज्ञात हो ओर चेतनाके प्रकाशके बुलानेका उपाय है। जाती हैं, वरं वे हमें प्रिय भी हो जाती हैं। जिन बातोंके मनुष्यका वैयक्तिक अचेतन मन उसकी मानसिक बारेमें हम कुछ जानते नहीं, वे हमें प्रिय भी नहीं होतीं। ग्रन्थियों और दिमत इच्छाओंका बना हुआ है। दबी हुई मनुष्यको जो वस्तु प्यारी लगती है, वह उसकी वृद्धि इच्छाओंके चेतनापर प्रकाशित होनेसे रेचन हो जाता है

करनेकी भी चेष्टा करता है। इस तरह चेतनासे प्रकाशित वस्तुओंकी वृद्धि होने लगती है। मनुष्यके सांसारिक धन-वैभवकी वृद्धि इसी प्रकार होती है। शरीरकी उन्नति भी शरीरके विषयमें सोचनेसे होती है। जब मनुष्य बहिर्मुखी रहता है तो वह सांसारिक उन्नति करता है। उसके धन, यश और मान-प्रतिष्ठा बढ़ते हैं, पर उसका स्वत्व अन्धकारमें रह जाता है। अन्धकारमें रहनेके कारण न तो मनुष्यको अपने-आपका

कुछ ज्ञान होता है और न उसे अपना-आप प्रिय ही

जाता, तबतक उन्हें जीवन भाररूप हो जाता है।

लगता है। इतना ही नहीं, बहिर्मुखी व्यक्तिको यदि अकेला छोड़ दिया जाय तो वह अपने-आपसे इतना विकल हो जायगा कि उसे आत्महत्या करनेकी इच्छा होने लगेगी। यदि किसी कारणसे बहिर्मुखी व्यक्तियोंको कभी अकेले रह जाना पड़ता है तो वे जीवनसे निराश हो जाते हैं। उनके विचार उनके नियन्त्रणमें नहीं रहते। उनकी मानसिक ग्रन्थियाँ उन्हें भारी त्रास देने लगती हैं। जबतक उन्हें फिर किसी प्रकारका व्यवसाय नहीं मिल

चेतनाका प्रकाश बाहर जानेसे मनुष्यके मनमें अनेकों प्रकारके संस्कार पडते हैं। ये सभी संस्कार मानसिक क्लेशके कारण बन जाते हैं। इनसे आत्माकी प्रियता कम हो जाती है और बाहरी पदार्थींकी ओर आकर्षण बढता जितान्ह्रिपाइसा प्रवेहर पर्वु प्रदेहा प्रवृति नामा शिक्ष इति स्वर्ति स्वरति स्वर्ति स्वरति स्

जब मनुष्य अन्तर्मुखी हो जाता है तो बाह्य पदार्थोंकी प्रियता चली जाती है। उसके कारण वे मनुष्यके मनपर अपने दृढ़ संस्कार नहीं छोड़ते। इस प्रकार नया कर्मविपाक बनना बन्द हो जाता है। सदा आध्यात्मिक चिन्तन करनेसे मनुष्यकी पुरानी मानसिक ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। अब उसे अपने सुखके लिये

[भाग ९२

इधर-उधर दौड़ना नहीं पड़ता। उसे अपने विचारोंमें ही असीम आनन्द मिलने लगता है। अब अनेक प्रकारकी सांसारिक चिन्ताएँ किसी प्रकारकी मानसिक अशान्ति उत्पन्न नहीं करतीं। मनुष्य निजानन्दमें निमग्न रहता है। ऐसा व्यक्ति सदा साम्यावस्थामें रहता है। चेतनाका प्रकाश धीरे-धीरे भीतरकी ओर मोडा

और बहुत-सी मानसिक ग्रन्थियाँ इस प्रकार खुल जाती

हैं, पर उससे मानसिक ग्रन्थियोंका बनना रुकता नहीं।

नयी मानसिक ग्रन्थियाँ बनती ही जाती हैं। इस प्रकार

अचेतन मनका नया भार तैयार होता जाता है। मनोविश्लेषण-चिकित्सासे मनुष्यकी व्याधिविशेषका उपचार

हो जाता है, पर उससे मूल रोग नष्ट नहीं होता। वह नये-नये रूपोंमें प्रकाशित होता रहता है। जबतक

अचेतन मनपर चेतनाका प्रकाश नहीं जाता, तबतक वह

मानसिक प्रकाशको बाहरकी ओर जानेसे रोककर उसे

भीतरकी ओर ले जाता है।

```
संख्या ४ ]
                                         श्रीहनुमान-स्तुति
आवश्यकता है। जब मनुष्यको बाह्य विषयोंसे विरक्ति
                                                 कठिनाई किसी इच्छित बाह्य पदार्थके प्राप्त करनेमें होती
हो जाती है अर्थात् जब वे उसे दु:खरूप प्रतीत होने
                                                 है, उससे कहीं अधिक कठिनाई आत्मज्ञान प्राप्त करनेमें
लगते हैं, तभी वह सुखको अपने भीतर खोजनेकी चेष्टा
                                                 होती है। आत्मज्ञान मनकी साधनासे उत्पन्न होता है।
करता है। मनके हताश होनेकी अवस्थामें मनुष्यके
                                                 जबतक मन निरवलम्ब नहीं हो जाता, पुरुषार्थीको
विचार स्थिर ही नहीं रहते, उसे सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे
                                                 स्वरूपका ज्ञान नहीं होता। पर मनका सहजस्वभाव
असन्तोष होता है। वह सभी प्रकारके प्रयत्नोंको सन्देहकी
                                                 आत्मासे इतर वस्तुपर अवलम्बित होकर रहना है। उसे
दृष्टिसे देखने लगता है। अतएव एकाएक मनको
                                                 अपनी इस आदतसे मुक्त करनेमें जितना प्रयास करना
अन्तर्मुखी नहीं बनाया जा सकता, पर धीरे-धीरे अभ्यासके
                                                 पडता है, वह कल्पनातीत है।
                                                      जब मनुष्य चेतनाके प्रयासको अपनी ओर मोडनेमें
द्वारा उसे अन्तर्मुखी बनाया जा सकता है।
    जब मनुष्य अन्तर्मुखी होता है तो उसे ज्ञात होता
                                                 समर्थ हो जाता है तो उसे सबसे अधिक प्रिय वस्त्
है कि मनुष्यका मानसिक संसार उसके बाह्य संसारसे
                                                 अपना-आप ही हो जाता है। फिर वह किसी भी
फैलावमें कम नहीं है। जितना बाह्य संसारका विस्तार
                                                 सांसारिक वस्तुमें अपना मन नहीं फँसाता। उसका मन
है बल्कि उससे कहीं अधिक आन्तरिक संसारका है।
                                                 स्वभावतः आत्माकी ओर ही जाने लगता है। ऐसी
                                                 स्थितिमें पुरानी सभी मानसिक ग्रन्थियाँ नष्ट हो जाती हैं
अर्थात् मनुष्यको आत्मस्थिति प्राप्त करनेके लिये उतना
ही अधिक अध्ययन, विचार और अन्वेषण करना पड़ता
                                                 और नयी मानसिक ग्रन्थियाँ बनतीं नहीं। फिर मनुष्यका
है, जितना कोई भौतिक विज्ञानमें रुचि रखनेवाला
                                                 जीवन प्रकाशमय हो जाता है, ऐसे व्यक्तिके विचार
अन्वेषक करता है। जैसे पदार्थ-विज्ञानका भारी विस्तार
                                                 आत्मनियन्त्रणमें रहते हैं। उसके मनमें किसी प्रकारकी
है, उसी प्रकार अध्यात्मविद्याका भी भारी विस्तार है।
                                                 आत्मग्लानिकी भावना नहीं आती। वह सदा स्वस्थिचित्त
    संसारकी सभी वस्तुएँ आत्मसन्तोषके लिये हैं।
                                                 रहता है। इस प्रकारके स्वास्थ्यको प्राप्त करनेके लिये
यदि मनुष्यको आत्मसन्तोषका सरल मार्ग ज्ञात हो जाय
                                                 मनुष्यको जब कभी अवसर मिले, आध्यात्मिक चिन्तनमें
तो वह सांसारिक पदार्थोंके पीछे क्यों दौडे? पर यह
                                                 समय लगाना चाहिये और उसको अपनी आदत बना
आत्मसन्तोष प्राप्त करना सरल काम नहीं। जितनी
                                                 लेना चाहिये।
                                    -श्रीहनुमान-स्तुति
                                     (श्रीगजेन्द्रसिंहजी 'ग्रुदास')
  मारुतनन्दन! हे जगवन्दन!! हे शंकर अवतारी।
                                                 अतुलित बलधारी कपितनुधारी ब्रह्मचर्य व्रतधारी।
हे दुष्टनिकन्दन! हे दुखभंजन!! स्तुति करें तिहारी॥
                                                 कर मुद्गरधारी गिरवर धारी
                                                                              अद्भुत आयुधधारी॥
              मंगल सूरति मंगलमय मुदकारी।
                                                 श्रीराम सहायक पायक लायक सायक भक्त पुजारी।
जय मंगलमुरति
                 मंगलकारी
                                    अमंगलहारी॥
                                                 बानर कुल नायक हरिगुण गायक वरदायक फलचारी॥
                            सकल
                                                 अतिशय बङ्भागी प्रभु अनुरागी सेवक आज्ञाकारी।
तव मात अंजनी तात केशरी गुरु रवि स्वामि खरारी।
सुर नर मुनि झारी भूप भिखारी निशिदिन करत गुहारी॥
                                                 तव हृदय मँझारी जनकदुलारी दशरथ अजिर बिहारी॥
नखशिख छवि अनुपम अंग वज्र सम तेज सूर्य सम भारी।
                                                 संतन हितकारी अति उपकारी सुखकारी दुखहारी।
तन कनक बरन सम अमित पराक्रम आगम निगम उचारी॥
                                                 खल दल संहारी भव भयहारी अघहारी असुरारी॥
बल बुद्धि प्रदाता विद्या दाता त्राता गुन आगारी।
                                                   संकटमोचन! पिंगललोचन!! हरिजन रोचनकारी।
सिधि निधि भण्डारी परम उदारी अजर अमर अविकारी॥
                                                 'गुरुदास' अनारी शरन तिहारी चरन-कमल बलिहारी॥
                             अंजनीकुमार!
                                                          तिरताप
                                                                   की।
                        हे
                              लीजे
                                                        स्तुति
                                    स्वीकार,
                                                                आपकी॥
                                                 मंगल
                        कर
```

निष्कामभावनासे लाभ और साधकोंके प्रति—

कल्याण

िभाग ९२

१६

#### सकामभावनासे हानि ( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

हम सब स्वरूपत: परमात्माके ही अंश हैं-जितना पतन होता है, उतना कामनाकी अपूर्तिसे नहीं

होता। भगवान्ने भी कहा है कि 'आशापाशशतैर्बद्धाः'

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(गीता १६।१२)—आशाकी सैकडों फॉॅंसियोंसे बँधे (रा०च०मा० ७।११७।२)

परंतु ऐसा होनेपर भी कामनाके कारण-हुए मनुष्य 'पतन्ति नरकेऽश्चौ' (१६।१६)—

अपवित्र नरकोंमें ही गिरते हैं। सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥

एक बात और समझनेकी है कि कामना-पूर्ति (रा०च०मा० ७।११७।३)

होनेपर भी कामना कभी मिटती नहीं, अपितु और अधिक

कीर (तोता) पीनेमें और मर्कट (बन्दर) खानेमें

बँध जाता है। संसारमें भी सभी खाने-पीने (भोग बढ़ती जाती है—'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥'

(रा०च०मा० ६।१०१।२)<sup>१</sup> एक कामना पूरी होनेपर

भोगने)-में ही बँधे हुए हैं। यदि कामना न हो तो बन्धन

न हो। कामनाकी पूर्ति और अपूर्ति दोनों अवस्थाओंमे दूसरी कामना पैदा हो जाती है, जिससे कामनाओंका कभी

पराधीनता ज्यों-की-त्यों रहती है, फिर भी जबतक

कामनाकी पूर्ति नहीं होती, तबतक तो पराधीनताका

अनुभव होता ही है; पर जब कामनाकी पूर्ति हो जाती

है, तब अन्त:करणमें ऐसा अँधेरा छा जाता है कि

पराधीनताका अनुभवतक नहीं हो पाता है। कामनाकी पूर्ति होनेसे अभिमान, अज्ञान, पराधीनता आदि विशेषरूपसे

बढ़ते हैं। अतएव कामनाकी पूर्तिसे हानि ही होती है,

लाभ कुछ भी नहीं होता। मनुके अनुसार केवल

धर्मानुष्ठान एवं भगवद्भक्ति-भगवद्दर्शनकी कामना ही लाभकारिणी कल्पलता है।

संसारी कामनाओंकी पूर्ति होनेपर अभिमान बढ़

जाता है, जो आसुरी-सम्पत्तिका मूल कारण है (गीता

१६।४)। अभिमान बहेडे़के वृक्षके समान है, जिसकी

छायामें कलियुग अथवा सम्पूर्ण आसुरी-सम्पत्ति निवास

करती है\*। कामना पूरी होनेपर प्रसन्नता होती है,

जिससे घमण्ड आ जाता है। घमण्डी पुरुष धर्मसे

च्युत हो जाता है। अतएव कामनाकी पूर्ति होनेसे

\* महाभारतमें नल-दमयन्तीके उपाख्यान (वन० ७२। ३८)-में आता है कि कलियुग नलके शरीरसे निकलकर बहेड़ेके वृक्षमें प्रवेश कर

गया था। इसलिये उसकी छायामें रहनेवालेको कलियुग प्रभावित करता है।

१. न जातु काम: कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥ (श्रीमद्भागवत ९।१९।१४) 'विषयोंके उपभोगसे कामना कभी शान्त नहीं होती, अपित अग्निमें घीकी आहुतिके समान वह अधिकाधिक बढती ही जाती है।' बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय भोग बहु घी ते॥ (विनयपित्रका १९८)

अन्त ही नहीं हो पाता। कामनाओंके रहते परमात्माकी

प्राप्ति अथवा तत्त्व-ज्ञान असम्भव है। वस्तृत: कामना

करनेसे अपूर्ति (अभाव) बढ़ती है और कामनासे रहित

परंतु कामनाको मिटा देनेमें सब स्वतन्त्र हैं। यदि मनमें

कोई कामना नहीं है तो किसीके भी अधीन अर्थात्

पराधीन होनेकी आवश्यकता नहीं है, किसीकी भी

कामनाके मिटनेपर—इन तीनों अवस्थाओंपर आप गहरा

विचार करें तो यह भलीभाँति अनुभव हो सकता है कि

कामनाके रहनेपर बड़ी छटपटी होती है। कामनाकी पूर्ति

होनेपर दादकी खुजलीकी तरह थोड़ा-सा सुख होता है,

(खुजलीमें पहले सुख होता है, फिर जलन होती है।

किंतु खुजली और जलन दोनों ही रोग हैं) परंतु

कामनाके मिटते ही शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है-किसी

कामनाको पूरी करनेमें कोई भी स्वतन्त्र नहीं है,

कामनाके रहनेपर, कामनाकी पूर्ति होनेपर और

होनेपर अपूर्ति सदाके लिये मिट जाती है।

सहायताकी आवश्यकता नहीं है।

'त्र दे ऐसा वरदान मुझे' संख्या ४ ] प्रकारकी चिन्ता या व्याकुलता नहीं रहती (गीता कामना ही है। कामनाके बिना कभी दु:ख हो ही नहीं २।७०-७१)। जिस विषयके लिये आपके मनमें कामना सकता और कामनाके रहते हुए स्वप्नमें भी सुख नहीं मिल सकता—'काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥' नहीं है, उस विषयमें आपको कोई भी परेशानी या चिन्ता (रा०च०मा० ७।९०।१) संसारके समस्त पाप, संताप, नहीं होती । कामनाके पैदा होते ही परेशानी, चिन्ता, दु:ख, हलचल आदि होने लग जाते हैं। बेचारा दु:ख, चिन्ता, क्लेश, निन्दा, अपमान, रोग आदि कामनायुक्त मनुष्य सदा दु:ख ही पाता रहता है। कामनाके ही फल हैं। नरकोंमें जो कराह रहे हैं, रो रहे हैं, कामनाकी पूर्ति और अपूर्ति—दोनोंमें ही दु:ख होता है; छटपटा रहे हैं—सब कामनाका ही परिणाम है। कामनाके क्योंकि जिनकी कामना की जाती है, वे समस्त ही कारण मनुष्य बारम्बार जन्म-मरणरूपी आवागमनको सांसारिक सुख-भोग दु:खके ही हेत् हैं-प्राप्त होता है—'गतागतं कामकामा लभन्ते॥' (गीता ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। ९। २१) कामनाके नष्ट होनेपर पाप, संताप, दु:ख, आदि सब-के-सब सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ संत, शास्त्र तो कहते ही हैं, स्वयं भगवान् भी (गीता ५।२२) 'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न सबको कामनासे रहित होनेके लिये कहते हैं। भगवान् होनेवाले सब भोग हैं, वे नि:सन्देह दु:खके ही हेतु हैं समस्त भूतप्राणियोंके सुहृद् हैं—'सुहृदं सर्वभूतानाम्' और आदि-अन्तवाले अर्थात् उत्पन्न-विनाशशाली एवं (गीता ५।२९) अतः वे वही बात कहेंगे, जिसमें हम अनित्य हैं। इसलिये हे कौन्तेय! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष सबका परम हित होता हो और जिसके पालनमें हम सब उनमें नहीं रमता।' समर्थ हों। अतएव हम सब सुगमतापूर्वक समस्त संसारी कामनाओंका त्याग कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। संसारमें जितने भी दु:ख हैं, उन सबका मूल कारण 'तू दे ऐसा वरदान मुझे' ( श्रीमहेशचन्द्रजी त्रिपाठी ) कष्टों से मुक्ति न माँग रहा, \* जग से मुँह मोड़ न भाग रहा। तुझसे मिलने को आतुर, \* सोते भी में में जाग रहा॥ होवें कितने ही कष्ट मुझे, चरणों में अवनत माथ रहे, हर क्षण साहस का साथ रहे। जग कर नहिं सकता भ्रष्ट मुझे। तुझसे जुड़कर जीता अडचनें अनेकों आयें, पर, कौन करेगा नष्ट मुझे ॥ बाजी अपने ही रहे ॥ हाथ सहनेकी शक्ति दे प्रार्थना यही, यही, मुझे, कामना दे निज चरणों की भक्ति मुझे। मेरी तुझसे यही। याचना मुझे, करने, ऐसा भला दूसरोंका तू वरदान कहूँ हमेशा सही-सही॥ की कालजयी अनुरक्ति मुझे ॥ उत्कर्ष याकि अपकर्ष हो मेरा वर्तमान. तेरा दिव्य गाऊँ पर, मैं हर क्षण संघर्ष करूँ। गायन के करने को जो भी काम मिले. गुंजन गुंजित हो सहर्ष करूँ॥ जाए प्राण-प्राण॥ पूरा उसे

( श्रीबरजोरसिंहजी ) मृत्युके समय मनुष्य सबसे अन्तमें जो विचार आ चुका था, भयकी अधिकता और पूरे वेगसे उछलनेके

अन्तकालको भावना

करता है, जिसका चिन्तन करता है, उसका अगला जन्म कारण उसके पेटका मृगशावक बाहर निकल पड़ा और उसी प्रकारका होता है। इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्ण नदीके प्रवाहमें बहने लगा। हरिणी तो इस आघातसे गीतामें कहते हैं-यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ अर्थात् हे कौन्तेय! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहता है। इसी सन्दर्भमें श्रीमद्भागवतमें राजर्षि भरतका चरित्र आया है, जिन्होंने

पृथ्वीका एकच्छत्र राज्य त्यागकर वैराग्य लिया, पर एक मृगमें आसक्ति हो जानेके कारण उन्हें मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ा। श्रीमद्भागवतमें उनकी मृत्युके समयका वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय भी वह हरिणशावक उनके पास बैठा पुत्रके समान शोकातुर हो रहा था। वे उसे इस स्थितिमें देख रहे थे और उनका चित्त उसीमें लग रहा था। इस प्रकारकी

आसक्तिमें ही उनका शरीर भी छूट गया। तदनन्तर उन्हें अन्तकालकी भावनाके अनुसार अन्य साधारण पुरुषोंके समान मृगशरीर ही मिला। किंतु उनकी साधना पूरी थी, इससे उनकी पूर्वजन्मकी स्मृति नष्ट

नहीं हुई।\* उपर्युक्त प्रसंग भरत-चरित्रसे है। वानप्रस्थ-आश्रममें राजर्षि भरत एक दिन नदीमें स्नान करके सन्ध्या कर रहे

थे। उसी समय एक गर्भवती हरिणी वहाँ जल पीने आयी। मृगी पानी पी ही रही थी कि कहीं पासमें ही

सिंहकी भयंकर गर्जना हुई। भयके मारे मृगी पानी पीना छोड़कर छलाँग मार भागी। मृगीका प्रसवकाल समीप

\* तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजिमवानुशोचन्तमिभवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकिममं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप॥ (श्रीमद्भा० ५।८।२७) उस समय भी वह हरिणशावक उनके पास बैठा पुत्रके समान शोकातुर हो रहा था। वे उसे इस स्थितिमें देख रहे थे और उनका चित्त

कहीं दूर जाकर मर गयी। सद्य:प्रसूत मृगशावक भी मरणासन्न था। राजर्षि भरतको दया आ गयी। वे उसे प्रवाहमेंसे उठाकर आश्रममें ले आये। वे बडे स्नेहसे उस मृगशावकका लालन-पालन करने लगे। धीरे-धीरे उसमें

उनका मोह और फिर आसक्ति हो गयी। भरतजीको मृगसे आसक्ति हो गयी थी, इसलिये उन्हें अगला जन्म मृगका ही मिला, पर उनकी स्मृति बनी रही, इसलिये

दी। मृगका शरीर छूटनेपर उनका अगला जन्म ब्राह्मणकुलमें हुआ। इस जन्ममें भी भगवानुकी कृपासे अपनी पूर्व जन्म-परम्पराका स्मरण रहनेके कारण वे इस आशंकासे

उन्होंने मृगशरीरमें रहते हुए भी दुबारा आसक्ति नहीं होने

कि कहीं फिर कोई विघ्न उपस्थित न हो जाय, अपने स्वजनोंके संगसे भी बहुत डरते थे। हर समय जिनका

उसीमें लग रहा था। इस प्रकारकी आसक्तिमें ही मुगके साथ उनका शरीर भी छूट गया। तदनन्तर उन्हें मुगशरीर ही मिला। किंत उनकी साधना Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

ओर बढ़ेंगे। हमें कम उम्रसे ही ईश्वरकी भक्ति करनी

चाहिये, जिससे हमारी भावना और ईश्वरकी याद

अन्तकालमें भी बनी रहे।

है कि जो मुझे अन्तकालमें याद करता है, वह मेरे

स्वरूपको ही प्राप्त होता है, पर वह यदि किसी

दूसरे चिन्तनमें प्राणका त्याग करता है तो वह उसे

आनन्दमय जीवनके स्वर्णिम सूत्र ( से०नि०बिग्रेडियर श्रीकरणसिंहजी चौहान)

जीवनका प्रत्येक पल आनन्दका स्रोत है। हमारी आनन्दसे जीवन व्यतीत कर सकूँ ? बुद्धिजीवियोंने गहन

मनोदशाको हमारे मस्तिष्कमें उपलब्ध लगभग २०० विचार-विमर्शके पश्चात् सुझाया, 'राजन्, आप सदैव

हर स्थितिमें यह विचार करें कि यह समय भी बीत

रसायन प्रभावित करते हैं। चिन्ताकी अवस्थामें मस्तिष्कसे

एनडोरिफन रसायनका प्रवाह होता है, जो कि मोरिफनकी जायगा।' भाँति है तथा पीडाहारकके रूपमें कार्यकर प्रसन्नचित्त संत तरेसाने कहा था, 'कोई भी परिस्थित तुम्हें विचलित नहीं कर सकती, कोई भी परिस्थिति तुम्हें

रहनेमें हमारी सहायता करता है। चिन्ता एक आदतकी तरह है, जिसे हमने दूसरोंके मापदण्डोंसे अपनाया है। भयभीत नहीं कर सकती, क्योंकि वह तो क्षणभरकी ही

होती है।'

चिन्ताके साथ न तो कोई जन्मा है न जन्मेगा। अपनी धारणाओंमें बदलाव लानेसे ही चिन्तासे मुक्ति पायी जा

उत्कृष्टता अति आवश्यक है अर्थात् आनेवाले कलकी

सकती है।

प्रसन्तता तथा आनन्द किसी भी औषधिके रूपमें नहीं आते, जिसका सेवनकर सदैव प्रसन्नताकी स्थितिमें

रहा जा सके। हालॉॅंकि वैज्ञानिकोंने एक औषधि 'प्रोजेक' बनायी है, जो प्रसन्नता लानेमें सहायक होती

है। लेकिन सदैव प्रसन्नचित्त और आनन्दित रहनेके लिये हमें स्वयं ही कुछ उपायोंको अपनाना उचित होगा।

आजके युगमें जबकि विज्ञान, संचार, तकनीकी-प्रगति, सामाजिक एवं आर्थिक स्थितिमें तीव्र परिवर्तन, पर्यावरण-प्रदुषण, जनसंख्या-विस्फोट, बेरोजगारी आदि

चरम सीमापर हैं तथा रोगोंके रूपमें आनेवाले कलकी परछाईं हमें स्पष्ट दिखायी दे रही है। ऐसी स्थितिमें हमें स्वयं ही सही दिशाका चुनाव करते हुये जीवनका ध्येय निर्धारित

करना होगा। इसके लिये कुछ उपाय विचारणीय हैं— समय परिवर्तनशील है—बर्नाड शॉने कहा था— 'जीवनभरतक प्रसन्नता! इसे कोई भी व्यक्ति सहन नहीं

कर सकता। यह तो इस पृथ्वीको नरक बना देगी।' सुख-दु:ख, चिन्ता-प्रसन्नता, रोग-स्वास्थ्य एक ही

गाड़ीके दो पहियोंकी भाँति हैं तथा इन्हें समान दृष्टिसे देखनेपर दु:ख, चिन्ता एवं तनाव कभी नहीं होगा। एक

बार एक राजाने कुछ बुद्धिजीवियोंसे यह पूछा कि मुझे

साथ सहयोग करते हुए जिस सरलतासे नदीका जल प्रवाहित होता है, पक्षी खुले आकाशमें विचरण करते हैं, सूर्य-चन्द्र उदय एवं अस्त होते हैं, वनस्पतियाँ

पथपर अग्रसर होता है।

जीवन एक महाभारत है, जिसमें युद्ध-कौशलकी

तैयारी एक युद्धकी भाँति करनी आवश्यक है। 'यह भी

बीत जायगा' की धारणासे आशय आलस्य और

आरामदायक जीवन व्यतीतकर क्षणिक आनन्द-प्राप्तिसे

न होकर एक ऐसे योद्धासे है, जो कि सकारात्मक सोच,

परिस्थितियोंको अपने अनुकूल बनाता हुआ सदैव प्रगतिके

किसी भी सरल वस्तु एवं घटनाको हम अपनी शिक्षा,

परिवेश एवं अर्द्धविवेकसे दुविधापूर्ण बनानेका प्रयास

करते हैं। ज्ञानप्राप्तिके लिये प्रकृतिने हमें कान एवं

आँखें प्रदान की हैं। जबतक हमारी दृष्टि ध्येयपर है,

हम सदैव प्रगतिके पथपर आगे बढ़ते जाते हैं, परंतु

जैसे ही ध्येयसे हमारा ध्यान हटा, कई प्रकारकी

काल्पनिक चिन्ताएँ हमें तुरंत घेर लेती हैं। प्रकृतिके

जीवनको प्रकृतिके अनुरूप ढालें एवं सरल बनायें-

कठिन परिश्रम एवं लगातार संघर्षसे

चारों ओर सुगन्ध फैलाती हैं, उसी प्रकार मनुष्यको भी सरल भावसे आनन्दित होकर अपना जीवन-

[भाग ९२

निर्वाह करना चाहिये। प्रकृतिके नियमोंके विरुद्ध व्यवहार

एक पंक्तिमें यह बताओं कि किस युक्तिसे मैं अपने जीवनमें सुख एवं दु:खके क्षणोंको समान रूपसे ग्रहणकर करनेपर निश्चित ही दुष्कर परिणाम प्राप्त होंगे-जैसे

संख्या ४ ] आनन्दमय जीवन	नके स्वर्णिम सूत्र २१
*******************************	<u> </u>
मैड काऊ, मैड हेन, बर्ड फ्लू, एड्स आदि। यह	हैं। घरके अन्दर अकेले एक कन्या थी और वह
सब गम्भीर रोग एक दिशाकी ओर संकेत करते	अतिथियोंके लिये चावल कूट रही थी, जिससे वह
हैं-'सफल जीवनकी कला सदैव प्रकृतिके अनुकूल	उनके लिये भोजन बना सके। युवतीने बहुत-सी चूड़ियाँ
रहना है।'	धारण की हुई थीं और वे एक-दूसरेसे टकराकर
लक्ष्य यानी जीवनकी वास्तविक उत्तर	बज रही थीं। युवतीने एक-एक करके चूड़ियोंको
दिशा—गहनतासे विचारके पश्चात् हमें यह आभास	उतारना प्रारम्भ कर दिया और जब दोनों हाथोंमें
होने लगता है कि हमारे लिये आवश्यक क्या है?	एक-एक चूड़ी ही रह गयी तब आवाज समाप्त हो
'घड़ी' या 'कम्पास' (कुतुबनुमा)। घड़ी समय दर्शाने	गयी। दत्तात्रेयजीने इससे यह सीखा कि जीवनकी
तथा विभिन्न कार्यकलापोंसे जुड़ी है, लेकिन कम्पास	वास्तविक दिशाका ज्ञान मनुष्यको तभी हो सकता
हमारे मूल्यों, लक्ष्यों एवं उद्देश्योंसे जुड़ा होता है।	है, जब वह शोरगुल, भीड़, वाद-विवादसे परे रहे।
कोई भी व्यक्ति अपनी आँखें बन्द करके उत्तर दिशाकी	कम्पासके सहारे ही पायलेट वायुयान व उसके
ओर संकेत नहीं कर सकता है और जब ऐसे व्यक्तियोंका	अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करते हैं, अथाह समुद्रमें समुद्री
समूह उत्तर दिशा ढूँढ़नेका प्रयत्न करे तो वे अवश्य	जहाजका संचालन भी लक्ष्यपर कायम रहनेसे ही
अलग-अलग दिशाकी ओर संकेत करेंगे। वास्तविक	होता है। इसमें एक बात ध्यान देनेयोग्य है कि सही
उत्तर दिशाके भानके लिये कम्पास जरूरी है, जिसकी	दिशा ज्ञात करनेके पश्चात् भी हर व्यक्तिका एक
सुई हमेशा उत्तर दिशाकी ओर ही संकेत करती है।	डीविएशन होता है, जिसका पता स्वयं के अनुभव
इसी प्रकार भविष्यको आनन्दमय बनानेके लिये हमें	एवं प्रयोगोंसे करना आवश्यक है। सेनाके प्रशिक्षणमें
हमारे लक्ष्य अर्थात् निर्धारित दिशाका ज्ञान होना	यह दिशा प्रदान की जाती है ताकि सैनिक दुश्मनके
आवश्यक है, क्योंकि जीवनकी अधिकांश समस्याएँ	क्षेत्रमें भी अपने डीविएशनको ध्यानमें रखते हुए अपने
सुनिश्चित एवं सही दिशामें कार्य न करनेसे ही	गन्तव्यपर पहुँच सके।
उत्पन्न होती हैं। ज्यादातर व्यक्ति सुनिश्चितता इसलिये	<b>सदैव सीखते रहनेकी क्षमता</b> —यह विश्वास
नहीं अपना सकते, क्योंकि उन्हें इस बातका ज्ञान	रखिये कि जो भी व्यक्ति हमारे सम्पर्कमें आते हैं,
नहीं होता है कि कब क्या करना चाहिये? वैज्ञानिक	हमें कुछ-न-कुछ सिखानेको आते हैं। यहाँतक कि
रीतिसे विश्लेषण करनेपर वास्तविक उत्तर दिशा जो	बच्चे भी हमें बहुत कुछ सिखानेकी क्षमता रखते
कि हमारी दृष्टि (विजन)-से जुड़ी होती है, इसके	हैं। अगर हम खुले हृदयसे उनके ज्ञानका अनुसरण
चार बिन्दु विचारणीय हैं—१-आपको क्या परिणाम	करें, तो वे हमारे शिक्षक बन सकते हैं। इन्हीं भावनाओं
और कब चाहिये, २-परिणामको प्राप्त करनेके आधारभूत	एवं आन्तरिक ज्ञानसे ही एक अंग्रेज कविने कहा
नियम (ग्राउण्ड रूल) एवं दिशा-निर्देश (गाइड लाइन)	है—'चाइल्ड इज दी फादर ऑफ मैन' यह तभी
क्या हैं, ३-संसाधनकी उपलब्धता। ४-समय-समयपर	सम्भव है, जब हम एक छात्रकी प्रवृत्ति अपनायें।
स्वयंपर क्या-क्या नियन्त्रण तथा समय-सीमा होने	सीखनेमें ही उमंग, ज्ञान एवं आनन्द है। इससे ही
चाहिये। इस प्रक्रियामें अपने कम्पास एवं घड़ीका	जीवनमें अवसर ग्रहण किये जा सकते हैं।
समन्वय करना आवश्यक है।	सीखनेका अर्थ है प्रगति करना और स्वयंको
एक बार दत्तात्रेयजी कहीं जा रहे थे। मार्गमें	विकसित करना। हेलन केलरने जीवन-पर्यन्त अपनी
उन्होंने देखा कि एक घरके बाहर कुछ अतिथि बैठे	शारीरिक असमर्थताओंके होते हुए भी अपने आपको

सीखनेकी प्रवृत्तिमें स्मरणीय उदाहरणके रूपमें प्रस्तुत संतसे किसीने सदैव प्रसन्न रहनेका उपाय पूछा तो किया है। उन्होंने लिखा है—'जब कभी एक द्वार उन्होंने कहा कि किसी अन्य व्यक्तिको प्रसन्न करो. बन्द होता है, तो प्रभु अनगिनत द्वार खोलकर हमें आप स्वयं भी प्रसन्नचित्त हो जायँगे। एक सभ्य अवसर प्रदान करते हैं, लेकिन हम उस बन्द द्वारपर और ज्ञानी व्यक्ति सदैव सुख देकर प्रसन्न होता है ही निराश बैठे प्रतीक्षा करते रहते हैं।' एवं अज्ञानी व्यक्ति दु:ख देकर प्रसन्न होता है। आदतोंके भँवरसे बचाव-बार-बार एक ही सही दिशामें प्रयाससे आनन्दप्राप्ति— तरहके कार्य करनेसे यह आदतमें परिवर्तित हो जाता निम्नलिखित सात बातोंके बचावसे अवश्य ही आनन्दकी है। आदतें ही चरित्रका निर्माण करती हैं और चरित्र प्राप्ति होती है—१- सदैव अपने ही बारेमें बात भाग्यका निर्माता है। इसलिये इसपर गम्भीरतासे हर करना, २-सदैव स्वार्थी बने रहना, ३-अपने कर्तव्यका समय ध्यान करना चाहिये कि कोई भी रोजमर्राका समयपर निर्वाह नहीं करना, ४-हर वाक्यमें 'मैं', कार्य एक आदत तो नहीं बन रहा है। आदतोंको 'मेरा'का प्रयोग करना, ५-हर समय अपने भौतिक सुखके बारेमें सोचना, ६-हर समय यह लालसा रखना छोड़ना अति कठिन है। एक बार एक वृद्ध एक युवाके साथ जंगलमें भ्रमण कर रहा था। उसने कि आपकी प्रशंसा ही की जाय, ७-लालचभरे विचारोंसे सदैव अपने बारेमें अन्य लोगोंके विचार सुननेके लिये युवाको सर्वप्रथम एक उगता हुआ पौधा उखाड़नेको कहा। युवाने उसे उखाडकर फेंक दिया। फिर एक आतुर रहना। दिन बड़े पौधेको उखाड़नेके लिये कहा। वह भी जिस प्रकार सामाजिक नियम हर कालके लिये उस युवाने उखाड दिया। इसके पश्चात् एक बड़ा बनाये जाते हैं एवं परिवर्तनशील हैं, उसी प्रकार सुखकी पौधा उखाड्नेके लिये कहा, जिसे भी उसने थोड़े परिभाषा तो परिवर्तनशील है, मगर आनन्दकी परिभाषा प्रयाससे उखाड़ दिया, मगर चौथा पौधा जो कि पेड़ सदैव एक ही रहती है, क्योंकि यह तो एक आन्तरिक अनुभूति है। यह शास्त्र, पुस्तकें एवं लेख पढनेसे नहीं बन गया था, वह युवा उसे नहीं उखाड पाया। यही दशा हमारी आदतोंकी होती है। आदतको जड़से बल्कि सत्यको आचरणमें ढालनेसे ही मिलती है। एक उखाडनेका एक सरल तरीका है—उस आदतके विपरीत कागजपर शहद लिखकर और उस कागजका सेवन आदत डालनेका प्रयास करना। अगर आप सदैव करनेसे शहदकी मिठास प्राप्त नहीं हो सकती, न ही चिन्ताग्रस्त रहते हैं, तो प्रसन्नचित्त रहनेका प्रयास गधेको गंगाजलमें नहलानेसे वह बुद्धिमान् हो जाता है। करें एवं प्रसन्नचित्त, सकारात्मक सोचवाले व्यक्तियोंकी सही दिशामें प्रयास एवं परिश्रमसे आनन्दकी प्राप्ति संगत करें। अवश्यम्भावी है। चाबी हमारे पास है और ताला भी सेवाके लिये समर्पण—बिना किसी स्वार्थ एवं हमने ही जकड़ रखा है-उसे खोलना भी हमें ही प्रतिफलकी आशाके दूसरोंकी सच्चे हृदयसे सेवा करनेसे पडेगा, क्योंकि हर व्यक्ति आनन्दप्राप्तिका अधिकारी है। अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति होती है। यह सेवा निष्काम अपने आपको असमर्थ, निराश न मानकर अपनी विशाल क्षमताका भान, निष्काम कर्म, अध्ययन, सत्संग, स्वाध्याय, कार्यकी श्रेणीमें आती है। स्वामी विवेकानन्दने कहा प्रार्थना, पूजा-अर्चना, ध्यान और सेवासे सहज ही किया था—'प्रभ् उन्हींकी सहायता करता है, जो दुसरोंकी

जा सकता है।

हॅं भें inau is अनुराद्ध स्व च er रेख भूतिtp हो ग़ d इटै ! g grana आर्द्ध में श्रिक्त कि को कि मिष्ट राष्ट्र है । A vinash/Sha

अन्तमें सफलतासे बढ़कर कोई निधि नहीं, सफल

सहायता करते हैं।' इस सन्दर्भमें जीवनका ध्येय हर

वक्त यह हो—'मैं आपके लिये क्या कर सकता

[भाग ९२

पुरुषोत्तममासका महत्त्व एवं कर्तव्य भगवान् विष्णुके पूजनहेतु सभी मासोंमें पुरुषोत्तममास किया था। इस प्रकार इसमें शिव-विष्णु दोनोंकी ही आराधना विहित है और यह दोनोंको ही परम प्रिय है। (अधिमास अथवा मलमास) अत्यन्त विशिष्ट है। भगवान् नारायणने स्वयं कहा है— जो सौ वर्ष तप करनेका फल है, वह इसमें एक दिन मासाः सर्वे द्विजश्रेष्ठ सूर्यदेवस्य संक्रमाः। ही व्रत-तप करनेसे प्राप्त हो जाता है-अधिमासस्त्वसंक्रान्तिर्मासोऽसौ शरणं गतः॥ सम्यक् चीर्णेन तपसा शतवर्षमितेन च। मम प्रियतमोऽत्यन्तं मासोऽयं पुरुषोत्तमः। यत्फलं लभते विप्र मासेऽस्मिन्नेकवासरात्॥ अस्याहं सततं विप्र स्वामित्वे पर्यवस्थित:॥ (पुरुषोत्तममास-माहा० १७।१८) अन्य समयमें जो लक्ष (एक लाख) गायत्रीमन्त्र-(पद्मपुराण, पुरुषोत्तममासमा० १७। १४-१५) हे द्विजश्रेष्ठ!सभी माह सूर्यदेवकी संक्रान्तिके कारण जपका फल होता है, उतना इस मासमें किसी भी एक होते हैं, परंतु अधिकमासमें संक्रान्ति नहीं हुई, इसलिये वह मन्त्र जपनेसे हो जाता है-मेरी शरणमें आया है। तभीसे यह पुरुषोत्तममास मुझे सावित्रिलक्षजापेन लभ्यते यत्फलं नरै:। अत्यन्त प्रिय है। हे विप्र! मैं सदैव इस पुरुषोत्तममासके स्वामीके सकुन्मन्त्रजपेनैव मासेऽस्मिन्नुपलभ्यते॥ (पुरुषोत्तममास-माहा० १७।२१)

पुरुषोत्तममासका महत्त्व एवं कर्तव्य

रूपमें प्रतिष्ठित रहता हूँ। आगे भगवान् कहते हैं—'नालभ्यं दृश्यते किञ्चिन्मत्प्रिये पुरुषोत्तमे' (पद्मपुराण, पुरुषोत्तममासमाहा० १७। २२)। मेरे प्रिय पुरुषोत्तममासमें जप आदि करनेसे संसारमें कोई वस्तु अलभ्य नहीं रहती। वस्तुत: संक्रान्तिरहित मासको अधिकमास, मलमास या पुरुषोत्तममास कहते हैं। शुक्ल यजुर्वेद (२२। ३०)- के 'मिलम्लुचाय स्वाहा' तथा ऋक्० (१। १५। ८) आदिमें मलमास या पुरुषोत्तममासकी महिमाका स्पष्ट उल्लेख है। अथर्व० (५। ६। ४)-में इसे भगवान्का

संख्या ४ ]

आवासगृह बतलाया गया है—'त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः।' शिवपुराण (२।५।२।५२)-में भी इसका उपबृंहण हुआ है, जहाँ मलमास, अधिमास या पुरुषोत्तममासको साक्षात् भगवान् शिवका स्वरूप कहा गया है, वहाँ देवताओंके वचन हैं—'मासानामधिमासस्त्वं व्रतानां त्वं चतुर्दशी' अर्थात्—प्रभो! शिव! आप महीनोंमें अधिमास एवं व्रतोंमें चतुर्दशी (शिवरात्रि) व्रत

तपस्याकर भगवान् विष्णुसे उनका 'पुरुषोत्तमनाम' प्राप्त

महानाम आधमास एवं व्रताम चतुदशा (शिवरात्रि) व्रत हैं। रघुनन्दनके 'मलमासतत्त्व' तथा बृहन्नारदीय एवं पद्मपुराणके नामसे प्राप्त होनेवाले पुरुषोत्तममास–माहात्म्यमें इसकी महामहिमा है। एक अधिमासके बाद पुन: दूसरा अधिमास २८ से लेकर ३२ महीनोंके बीच पुन: पड़ता

अधिमास २८ से लेकर ३२ महीनोंके बीच पुन: पड़ता आत्म है और यह चैत्रसे आश्विनतकके महीनोंमें ही होता है। इसमें निष्कामकर्मोंकी ही अधिक महिमा है। अधिमासने

द्वादशाक्षरमन्त्रोऽयं यो जपेत् कृष्णसन्निधौ। दशवारमपि ब्रह्मन् स कोटिफलमश्नुते॥ (पुरुषोत्तममास-माहा० १७।२३) पाँचों पाण्डव, द्रौपदी, सुदेव, शुकदेव, दृढ्धन्वा

इसी प्रकार इसमें गीतापाठ, श्रीराम-कृष्णके मन्त्रों,

पंचाक्षर शिवमन्त्र, अष्टाक्षर नारायणमन्त्र, द्वादशाक्षर

वासुदेवमन्त्र आदिके जपका लाखगुना, करोड़गुना या

अनन्त फल होता है—

ध्वजादानकी भी बड़ी महिमा है। इससे अनेक प्रकारके सुख एवं स्वर्गलोककी उपलब्धि होती है— तस्मात्सर्वात्मना कार्यो दीपः श्रीविष्णुमन्दिरे। (पुरुषोत्तममास-माहा० १७।३६) इसी प्रकार इसमें दान-धर्मादिकी भी बड़ी महिमा

आदिने इसी मासमें धर्म-तपका अनुष्ठानकर परम सिद्धि

प्राप्त की थी। इसमें भगवानुकी पूजा, दीपदान एवं

है। हेमाद्रिने प्रतिदिन भगवान्के अलग-अलग नामोंसे अन्नदानकी विधि बतलायी है। इसमें एक बार भी थोड़ा तिल दान करनेसे या उसके द्वारा हवन करनेसे मनुष्यको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है और वह मुक्त हो जाता है—

ज्ञानकी प्राप्ति होती है और वह मुक्त हो जाता है तिलान् दत्त्वा सकृद्धुत्वा पुरुषोत्तमवासरे। आत्मबुद्धिं प्रपद्याशु ब्रह्मलोके महीयते॥

(पुरुषोत्तममास-माहा० १८।२३)

उलाहना भी प्रेमतत्त्व है

### (डॉ० श्रीअशोकजी पण्ड्या)

उलाहना भक्तका अन्तर्नाद और प्रेमका प्राकृत माखनचोर, कंकरमार, कपटी, छलिया, कालिया, काला,

स्वरूप है। द्वैतका परम प्रसाद यह प्रेम ही तो है, जो साँवला-जैसे अनेकानेक उलाहने तो कृष्णके पर्याय हो

आराध्य और भक्तको एक-दूसरेके लिये दूसरा बनाये गये हैं। चितचोर, मनमोहन आदि भी मूलत: उलाहनाके

रखता है। योगियों, ऋषियोंको भले ही अद्वैत अन्तिम रूपमें ही प्रयुक्त शब्दावली है, जो शब्द-विग्रहसे स्वत:

लक्ष्य प्रतीत होता हो, भक्तोंके लिये तो द्वैत ही प्राणरस

है। अपना होना और अपना मानना दोनोंको सुख प्रदान

करता है। प्रेमका यही मर्म है।

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥

\_(रा०च०मा० ५।१५।६)

यह सुखानुभूति ही प्रेम पल्लवित करती है। प्रेम जब

पुष्पित और फलित होता है तो संवाद स्वत: जन्म ले लेता है और परिणाममें सम्बोधन, प्रश्न, सन्तोष- असन्तोष,

तृप्ति-अतृप्तिविषयक झिड़की, डाँट-डपट, फटकार और

ताना कुछ भी प्रस्फुटित हो सकता है। वस्तुत: यह सख्य भाव है। मैत्रीके इस सोपानपर प्रेम तब 'उलाहना' देनेमें भी नहीं हिचिकचाता और यथार्थ अन्तरमें उद्वेलित होने

लगता है। वस्तुत: यह अधीरता ही भक्तका प्रेमाधिकार है, एकाधिकार है, जो उलाहनाका रूप लेकर प्रेमकी

तड़प प्रकट कर रहा होता है। गूढ़त: यह भक्ति ही है। आइये, भक्तिके इस स्वरूपका भी दर्शन करें।

भगवान्, भक्त, भक्ति और भजन 'भग' तत्त्वके नियामक घटक हैं। हम चाहें तब भी इन्हें पृथक् नहीं

कर सकते। भगवान्से भक्तको अलग नहीं किया जा सकता तो भक्तको भक्तिसे नहीं निकाला जा सकता।

भक्तिसे भजनको नहीं निचोडा जा सकता तो भजनसे भक्तिको नहीं छाना जा सकता। इसी तरह भजनसे भक्ति,

भक्तिसे भक्त और भक्तसे भगवान्को भी पृथक् नहीं किया जा सकता; क्योंकि यही प्रेमसिंचित सुष्टितत्त्व है।

रामायण यही तो प्रतिपादित करती है-सीय राममय सब जग जानी।

(रा०च०मा० १।८।२)

बोलनेका अधिकार तो प्रेम ही दे सकता है। नटखट,

भगवान् श्रीकृष्णको प्रेमावतार भी कहा गया है और कृष्णको ही सर्वाधिक उलाहना दिये गये हैं; क्योंकि

लगा है! हे यदुनन्दन! तुम कहाँ हो? तुम देख नहीं रहे

हो यह सब! द्रौपदी और क्या कहती? कहा—'हे कृष्ण! हे द्वारकावासिन्! क्वासि यादवनन्दन।' वाह रे प्रेम!क्या उलाहना है ? अपनत्व की यह विरहाग्नि

क्षोभसे क्रोधमें बदल जाती है। अपनत्वकी यह क्रोधाग्नि बस देखते ही बन पडती है। उलाहनाके इस आधिकारिक

िभाग ९२

पात्र द्रौपदीको प्रणाम ! अगले चरणमें वह फिर कहती है— 'कौरवै: परिभृतां मां किं न जानासि केशव।'

उच्चकोटिमें निरूपित हो गयी है, इसलिये ये शब्द विशेष

संज्ञा और विशेषण पा गये हैं। प्रेमाधिपतिके प्रेमार्घ्यने इन्हें

अमृत बना दिया है, अत: ये इनके विशेषण हो गये हैं।

सम्बोधित किया है, कैसे लताड़ा है, क्या-क्या नहीं कहा

है। चूँिक प्रेम इन्हें नहीं देखता। इसलिये हम भी इन्हें सीस

नवाते हैं तथापि वास्तविकताके धरातलपर जाकर तो देखें

कि इस परम शक्तिमान्को हम क्या-क्या कह गये हैं! कैसे-कैसे कटाक्ष किये हैं!!कैसे व्यंग्यबाण चलाये हैं!!!

चीर-हरणके प्रसंगमें दिये गये कृष्णाके उलाहनेसे जगजाहिर है। कौरव-सभा, पाण्डवोंकी उपस्थिति, दुर्योधनका

आदेश और दुःशासनका कृत्य। लज्जाका अनावरण

सुननेमें भी रोंगटे खड़े कर देता है तो आचरण कितना दारुण होगा! सोचा ही जा सकता है। भीष्मादिसे किया

गया अनुनय भी जब व्यर्थ हो गया तो कृष्णाका कारुण्य

क्रन्दन कर उठा और द्रौपदीने कृष्णको भी नहीं छोड़ा।

सम्बोधित किया—'द्वारकावासिन्।' द्रौपदीने मित्र, सखा,

मुरारी कोई शब्द काममें नहीं लिया। आवेगने कटाक्ष

किया—'हे द्वारिकावासिन्'! अर्थात् इतनी देर हो गयी, त् नहीं आया तो क्या मेरे मनसे निकल तू द्वारकामें रहने

कृष्ण-द्रौपदीके सख्यको कौन नहीं जानता? जो

अब देखिये जरा भक्तों, कवियोंने कान्हाको कैसे

(महा०सभा० ६८।४२)

'कौरवोंने मुझे परिभृत कर दिया है, क्या यह तुमने क्या कह दिया है? इसका लौकिक अर्थ क्या है, यह नहीं जाना केशव!' भी वह सोच नहीं पाता है, पर परमात्मा? वह तो इसे भी ओढ लेते हैं। यही ईश्वरत्व है। प्रेमकी इस फटकारने कृष्णका वस्त्रावतार करा दिया। अम्बरका अम्बार लग गया। दु:शासन थक गया। यह है भक्तका प्रेमाधिकार भाव, जो अपने सभा स्तम्भित हो गयी, वाह रे! प्रेमाधिकार! फटकाररूप आराध्यको कुछ भी कहनेसे हिचकता नहीं। गृढ्त: यही भक्तिके इस रूपको हमारा सौ-सौ प्रणाम। प्रेम है, यही भक्ति है। इसी प्रसंगको किसी भक्त-कविने इस रूपमें भी भक्त और भगवान् की जय! देखा है-व्यावहारिक जीवनमें हम भी कभी ईश्वरको उलाहना देते नहीं थकते। अवांछित परिणाम और पहले लाज गवाँयके फिर बढ़ायो चीर। क्या कहूँ दीनानाथ को, आखिर जात अहीर॥ मृत्युके हर प्रसंगपर 'ईश्वरने यह क्या कर दिया।', 'भगवान्को यही करना था', 'कैसा अनर्थ कर दिया', जातिका उलाहना भी कृष्णने सह लिया। यही प्रेमकी पराकाष्ठा है। पुन: प्रणाम! या इस मासूमने भगवान्का क्या बिगाड़ा था, आदि यहाँ यह द्रष्टव्य है कि भक्त यह भूल जाता है अनेक उलाहनाओंको झेलता यह ईश्वरतत्त्व बारंबार कि दु:ख और उसके आवेशमें उसने अपने आराध्यको प्रार्थनीय है। महल नहीं, धर्मशाला महाराज जीमृतकेतुके ऐश्वर्यका पार नहीं था। उन्होंने देवराज इन्द्रकी उपासना करके कल्पवृक्ष प्राप्त किया था। उनका राजभवन इतना भव्य था कि देवता भी उसे देखकर मुग्ध हो उठते थे। एक धार्मिक नरेश सांसारिक वैभवमें ही आसक्त रहे और मनुष्य-जीवन व्यर्थ व्यतीत कर दे, यह योग्य कार्य नहीं है। धर्मका सच्चा फल तो भोगोंसे विरक्ति तथा मोक्षकी प्राप्ति ही है। भगवान् दत्तात्रेयको दया आ गयी राजा जीमृतकेतुपर। वे मिलन वस्त्र पहने, केश बिखराये, धुलिधुसर अवधृत-वेशमें आये और राजभवनमें राजाके पलंगपर ही जा विराजे। राजसेवक डरे; किंतु आगत आगन्तुक जो कि एक पागल जान पड़ता था, पर उसके मुखका तेज कुछ ऐसा था कि कोई सेवक उसे रोकने या हटानेका साहस नहीं कर सका। अपनी शय्यापर एक उन्मत्त भिखारीको बैठै देखकर राजा जीमूतकेतु क्रोधसे लाल हो उठे। वे उसके पास आकर बोले—'तू कौन है? यहाँ राज-भवनमें क्यों घुस आया? निकल यहाँसे।' अवधृत दत्तात्रेय बड़ी निश्चिन्ततासे बोले—'भाई! अप्रसन्न क्यों होते हो? यह तो धर्मशाला है। तुम भी इसमें ठहरो, मैं भी ठहरता हूँ।' 'यह मेरा राजभवन है, धर्मशाला नहीं। समझे! चलो, बाहर जाओ!' राजाने डाँटा।

महल नहीं, धर्मशाला

संख्या ४ ]

अवधूत—'तो इसमें सदासे—हजार दो हजार वर्षसे तुम्ही हो?'
राजा—'कैसा पागल है, मुझे तो जन्म लिये अभी पचास वर्ष हुए।'
अवधूत—'उससे पहले इसमें कौन था?'
राजा—'मेरे पूज्य पिताजी।'
अवधूत—'वे कहाँ गये? कब लौटेंगे?'
राजा—'उनका शरीरान्त हो गया। वे अब कभी नहीं लौटेंगे।'
अवधूतने इसी प्रकार कई बार पूछा और राजाने बताया कि पितासे पूर्व पितामह, उनसे पूर्व प्रितामह
उस भवनमें रहते थे। अवधूत हँसे और बोले—'भले आदमी! जहाँ मनुष्य आकर कुछ काल ठहरकर चला
जाय, फिर न लौटे—वह धर्मशाला नहीं, तो और क्या है?'

परमात्माके दर्शनमें बाधक कौन ? (डॉ० श्रीरामेश्वर प्रसादजी गुप्त, एम०ए०, पी-एच०डी०) 'जीवन का है लक्ष्य, 'प्राणि सब,' पायें परम सच्चिदानन्द। तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं।। मोह-बन्ध से मोक्ष रहे, हो शान्ति अगाध सदा निर्द्वन्द्व। (रा०च०मा० ५।४७।१-४) श्रीराम या परमात्माके नाम और उनके सुचरित्रमें निर्मल अमल विमल तन मन हो, रहे न कोई भी छलछदा। लगन एवं समर्पण समस्त विकारोंका विनाश करता है। सबके अन्तस् में आजाये, आत्मज्ञान-उन्मेष अमन्द॥' मानव-जीवन बड़ा दुर्लभ होता है, जो बड़े ही यथा उल्लेख है कि-पुण्यसे प्राप्त होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने उल्लेख अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे। किया है, कि— तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला।। बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथिन्ह गावा॥ (रा०च०मा० ५।४७।५-६) ईश्वरकी प्राप्तिमें बाधक काम, क्रोध, लोभ तथा (रा०च०मा० ७।४३।७) मोह ही हैं। ये विकार मानव-जीवनको नरक बना देते मोक्षका श्रेष्ठ साधन यह मानव-जीवन है। यथा

उल्लेख है कि-साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥ (रा०च०मा० ७।४३।८)

प्रश्न उठता है कि अनुपम साधन-धाम यह तन प्राप्त होनेपर भी मनुष्य अपने लक्ष्यसे भटक क्यों जाता है ? उत्तर भी स्पष्ट है कि मायासे प्रेरित होकर मनुष्य

संसारके चक्रव्यूहमें बुरी तरह बँध जाता है। यथा— फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥ (रा०च०मा० ७।४४।५)

गोस्वामी तुलसीदासजीने परमात्म-दर्शनमें सबसे बडा बाधक तत्त्व काम या इच्छाको निरूपित किया है। काम या कामना-विकार अनैतिक ऐषणा है। अत: यह हेय है। यथोक्त है कि-तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।

जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥ (रा०च०मा० ५।४६) परमात्म-प्राप्तिमें बाधक 'काम' तत्त्वको दूर करने

हेतु परम श्रेयस्कर साधन भगवन्नामस्मरण है। गोस्वामी

तुलसीदासने कामादि विकारोंकी निवृत्तिके लिये श्रीरामके

स्मरण एवं आश्रयको ही श्रेष्ठ निरूपित किया है। यथा—

तब लिंग हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥

संतप्त करता है। यथा-

हैं। यथा निर्दिष्ट है कि—

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ। सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु भजिहं जेहि संत॥

श्रीमद्भगवद्गीताका भी यही कथन है कि-

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

द्वारं

अस्तु, ईश्वर-दर्शनमें सर्वाधिक बाधक तत्त्व

परमात्माके दर्शनमें व्यक्तिका अहंकार भी बहत

बडा बाधक है। गोस्वामी तुलसीदासने तो यहाँतक कह

दिया है कि व्यक्तिका अहंकार उसे सर्वाधिक शोक-

सकल सोक दायक अभिमाना॥

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

कामादिक विकार हैं, जो हेय एवं परिहार्य हैं।

और भी उल्लेख है कि—

नरकस्येदं

त्रिविधं

अन्यत्र भी उल्लेख है कि—

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।

(रा०च०मा० ७।७४।६)

(रा०च०मा० ५।३८)

नाशनमात्मनः।

(३।३७)

(१६।२१)

जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥ भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥ \_\_Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha ममता तरुन तमा अधिआरी राग द्वेष इल्लूक सुखकारा॥

परमात्माके दर्शनमें बाधक कौन? संख्या ४ ] श्रीमद्भगवद्गीता भी अहंकारकी विभीषक अहंताके लेता है। यथोक्त है कि-दुष्प्रभावको अभिव्यक्त करती है। यथा निर्दिष्ट है कि-समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं।। अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥ अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥ (गीता ३।२७) (रा०च०मा० ५। ४८। ६-७) और भी कहा गया है कि-परमात्माकी प्राप्तिमें बाधक इन विकारादिसे मुक्त होनेपर उस परमेशका स्मरण, उसकी भक्ति और मनकी अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः। प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥ निर्मलता अविलम्ब ही साधकको परमात्मासे मिला देती मामात्मपरदेहेषु है एवं उसके प्रत्यक्ष दर्शन करा देती है। भगवत्-(गीता १६।१८) अर्थात् अहंकार, बल, दर्प, कामना एवं क्रोधके स्मरण-विहीनता तो विपत्तिका आधार निर्दिष्ट है। यथा वशीभूत और परनिन्दक पुरुष अपने तथा दूसरोंके शरीरमें उल्लेख है कि-स्थित मुझ अन्तर्यामीसे द्वेष करनेवाले होते हैं। कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई। इस प्रकार वस्तुत: षड्विकार ही परमात्माके (रा०च०मा० ५। ३२। १) दर्शनमें बाधक होते हैं, इन विकारोंका त्याग ही हमें इसी प्रकार भक्तिको परम सुख-प्रदायिनी कहा परमात्म-दर्शन कराता हुआ तद्वत् बनाता है। यथा गया है। निर्दिष्ट है कि-नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥ अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्। (रा०च०मा० ५। ३४। १) विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ रामचरितमानसमें परमात्मदर्शनके लिये मनकी निश्छलता अनिवार्य कही गयी है। यथा-(गीता १८।५३) स्पष्ट है कि अभिमान आदि विकृतियोंसे मुक्त निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा। व्यक्ति ही भगवद्दर्शन प्राप्त करता है। (रा०च०मा० ५। ४४। ५) गोस्वामी तुलसीदासजीने उक्त विकारोंसे मुक्तिके और भी उल्लेख है कि— लिये भक्ति और सत्संगको श्रेष्ठ साधन निरूपित किया मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहिहें रघुराई॥ है। यथा— (रा०च०मा० १। २००। ६) निष्कर्ष यह है कि इस असार-संसारमें अहंकार जों परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दूढ़ गहहू॥ एवं कामक्रोधादि विकार सबसे अधिक नि:सार हैं। सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥ जब अभिमान गिरता है, तब भगवान् मिलते हैं। भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥ जब मनुष्य षड् विकारोंसे मुक्त होता है, तब वह (रा०च०मा० ७।४५।१-२,५) गोस्वामी तुलसीदासजीने बार-बार सचेत किया परमात्म-ज्ञानसे युक्त होता है एवं जब व्यक्ति निर्विकार है कि भगवद्दर्शनमें कामादिक विकार प्रबल बाधक हुआ भगवत्-स्मरणकर सुकृतसंलग्न होता है, तब हैं एवं निर्विकार तथा निष्काम व्यक्तिको परमात्मा वह परमसच्चिदानन्द परमात्माके दर्शनको प्राप्त कर स्वयं अपने दर्शन कराता हुआ अपने हृदयमें बैठा पाता है। हरति सिञ्जति दिशति वाचि सत्यं जाड्यं धियो मानोन्नतिं पापमपाकरोति। चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पंसाम्॥ कहिये, सत्संगति पुरुषोंका क्या उपकार नहीं करती? वह बुद्धिकी जड़ताको हरती है, वाणीमें सत्यका संचार करती है, सम्मान बढ़ाती है, पापको दूर करती है, चित्तको आनन्दित करती है और समस्त दिशाओंमें कीर्तिका विस्तार करती है। [ भर्तृहरि-नीतिशतक ]

'मेरे साँवरे! तेरी कृपा है' (डॉ॰ श्रीगोपालजी नारसन)

(डॉ॰ श्रीगोपालजी नारसन) वृंदावन शहरमें एक वैद्य थे, जिनका मकान भी जानेसे पहले मेरी शादी हो गयी थी, लेकिन बच्चा नहीं बहुत पुराना था। वैद्य साहब अपनी पत्नीको कहते कि हुआ। यहाँ भी इलाज किया और इंग्लैडमें भी करवाया,

'जो तुम्हें चाहिये, एक चिट्ठीमें लिख दो।' दुकानपर लेकिन हमारी किस्मतमें शायद बच्चा नहीं था। आपने आकर पहले वह चिट्ठी खोलते। सामानके भाव देखते, कहा, 'मेरे भाई! अपने भगवान्से निराश न हो, याद

आकर पहले वह चिट्ठी खोलते। सामानके भाव देखते, कहा, 'मेरे भ फिर कान्हासे दुआ करते कि 'साँवरे! मैं केवल तेरी रखो! उसके इजाजतसे तुझे छोड़कर यहाँ दुनियामें आ बैठा हूँ। तू मेरी है। औलाद, आजकी व्यवस्था कर देगा। उसी समय यहाँसे उठ मृत्यु—सब कु

जाऊँगा' और फिर कभी सुबह साढ़े नौ, कभी दस बजे वैद्यजी रोगियोंको दवा देकर वापस अपने गाँव चले जाते। एक दिन वैद्यजीने दुकान खोली। फिर चिट्ठी खोली तो देखते ही रह गये। एक बार तो उनका मन

भटक गया। उन्हें अपनी आँखोंके सामने तारे चमकते हुए नजर आ गये, लेकिन जल्द ही उन्होंने अपने मनपर काबू पा लिया। आटे, दाल, चावल आदिके बाद पत्नीने लिखा

था, 'बेटीके दहेजका सामान लाना है जी।' कुछ देर सोचते रहे, फिर बाकी चीजोंकी कीमत लिखनेके बाद दहेजके सामने लिखा 'यह काम मेरे कान्हाका

है, कान्हा ही जाने।'

एक-दो मरीज आये थे। उन्हें वैद्यजी दवाई दे रहे
थे। इसी दौरान एक बड़ी-सी कार उनकी दुकानके

थे। इसी दौरान एक बड़ी-सी कार उनकी दुकानके सामने आकर रुकी।

दोनों मरीज दवाई लेकर चले गये। वह साहब कारसे बाहर निकले और 'राधे-राधे' करके बेंचपर

बैठ गये। वैद्यजीने कहा कि 'अगर आपको अपने लिये दवा

लेनी है, तो आपकी नाड़ी देख लूँ। उस आदमीने कहा कि 'वैद्यजी! मुझे लगता है आपने मुझे पहचाना नहीं।

कि 'वैद्यजी! मुझे लगता है आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं १५-१६ साल बाद आपकी दुकानपर आया हूँ। आपको पिछली मुलाकातकी बात सुनाता हूँ, फिर शायद

वैद्यजी! मैं ५-६ सालसे इंग्लैंडमें रहता हूँ। इंग्लैंड

आपको सारी बात याद आ जायगी।'

ल तेरी रखो! उसके खजानेमें किसी चीजकी कोई कमी नहीं तू मेरी है। औलाद, माल, धन-दौलत, खुशी, गमी, जीवन-से उठ मृत्यु—सब कुछ उसीके हाथमें है। किसी वैद्यके हाथमें

मृत्यु—सब कुछ उसांक हाथम है। किसा वद्यक हाथम कुछ भी नहीं है। अगर औलाद होनी है तो मेरे सॉॅंवरेके आशीर्वादसे ही होनी है। औलाद देनी है तो उसे ही देनी है। मुझे याद है, आप बातें करते जा रहे थे और साथ-

ह। मुझ याद ह, आप बात करत जा रह थे आर साथ-साथ पुड़िया भी बना रहे थे। फिर आपने मुझसे पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है? मैंने बताया कि मेरा नाम सतीश है। आपने एक लिफाफेपर कान्हा और दूसरेपर

िभाग ९२

सतीश है। आपने एक लिफाफेपर कान्हा और दूसरेपर राधे लिखा। फिर दवा लेनेका तरीका बताया। लेकिन जब मैंने पूछा, 'कितने पैसे?' आपने कहा—'बस ठीक है।' मैंने जोर डाला, तो

आपने कहा कि 'आजका खाता बन्द हो गया है।' मैंने कहा—'मुझे आपकी बात समझ नहीं आयी।' 'भाई! आजके घर-खर्चके लिये जितनी रकम वैद्यने कान्हाजीसे माँगी थी, वह साँवरेने इनको दे दी है।

अधिक पैसे वे नहीं ले सकते।' मैं बहुत हैरान हुआ और शर्मिन्दा भी हुआ कि मेरे कितने घटिया विचार थे और यह वैद्य कितना महान् व्यक्ति है। मैंने जब घर जाकर पत्नीको दवा दिखायी और

सारी बात बतायी तो उसके मुँहसे निकला वे इंसान नहीं कोई फरिश्ता हैं और उनकी दी हुई दवा हमारी मनोकामना जरूर पूरी करेगी जी। वैद्यजी आज मेरे घरमें

तीन बच्चे हैं। हम पति-पत्नी हर समय आपके लिये

दुआएँ करते हैं। मैं जब भी वृन्दावन छुट्टीमें आया, कार उधर रोकी, लेकिन दुकानको बन्द पाया। कल दोपहर भी

आया था, दुकान बन्द थी। एक आदमी पास ही खड़ा

```
संख्या ४ ]
                                    'प्यारे! राम रसायन पी ले'
हुआ था। उसने कहा कि अगर आपको वैद्यजीसे
                                                सभी खर्चींके लिये पैसा आपको नकदी पहुँचा देंगे।
मिलना है तो सुबह नौ बजे अवश्य पहुँच जायँ, वरना
                                                आप कृपा करके मना मत करना।
उनके मिलनेकी कोई गारंटी नहीं। इसलिए आज सवेरे-
                                                     अपना घर दिखा दें, ताकि सारा सामान वहाँ
                                                पहुँचाया जा सके। वैद्यजी हैरान-परेशान होकर बोले-
सवेरे आपके पास आया हूँ।
                                                'सतीशजी! आप जो कुछ कह रहे हैं, मुझे समझ
    वैद्यजी! हमारा सारा परिवार इंग्लैण्डमें बस चुका
                                                नहीं आ रहा, मेरा इतना मन नहीं है। मैंने तो आज
है। केवल एक विधवा बहन अपनी बेटीके साथ
                                                सुबह जब पत्नीके हाथकी लिखी हुई चिट्ठी यहाँ
वृंदावनमें रहती है।
                                                आकर खोलकर देखी तो मिर्च-मसालाके बाद जब
    हमारी भाँजीकी शादी इस महीनेकी २१ तारीखको
                                                मैंने ये शब्द पढ़े—बेटीके दहेजका सामान, तो आपको
होनी थी। इस भाँजीकी शादीका सारा खर्च मैंने
                                                पता है मैंने क्या लिखा? आप खुद यह चिट्ठी जरा
अपने जिम्मे लिया था। दस दिन पहले इसी कारमें
उसे मैंने पानीपत अपने रिश्तेदारोंके पास भेजा कि
                                                देखें।' सतीशजी यह देखकर हैरान रह गये कि
                                                'बेटीके दहेज' के सामने लिखा हुआ था 'यह काम
शादीके लिये जो चीज चाहे खरीद ले। उसे पानीपत
                                                कान्हाका है, कान्हा ही जाने।' 'सतीशजी! यकीन
जाते ही बुखार हो गया, लेकिन उसने किसीको नहीं
                                                करो, आजतक कभी ऐसा नहीं हुआ था कि पत्नीने
बताया। बुखारकी दवा खाती रही और बाजारोंमें
                                                चिट्ठीपर बात लिखी हो और मेरे साँवरेने उसकी
फिरती रही। बाजारमें फिरते-फिरते अचानक बेहोश
होकर गिरी। उसे अस्पताल ले गये। वह बेचारी
                                                उसी दिन व्यवस्था न कर दी हो।' वैद्यजीने कहा।
इस दुनियासे चली गयी। इसके मरते ही न जाने
                                                आपकी भाँजीकी मौतका मुझे सदमा है, अफसोस
                                                है, लेकिन मैं साँवरेकी कुदरतसे हैरान हूँ कि वह
क्यों मुझे और मेरी पत्नीको आपकी बेटीका ख्याल
                                                कैसे अपने काम दिखाता है! वैद्यजीने कहा—'जबसे
आया। हमने और हमारे सभी परिवारने फैसला किया
                                                होश सँभाला है, मैंने बस एक ही पाठ पढा है।
है कि हम अपनी भाँजीके सभी दहेजका साज-
                                                शुक्र है, मेरे साँवरे! तेरा शुक्र है।'
सामान आपके यहाँ पहुँचा देंगे। शादी जल्दी है तो
इन्तजाम खुद करेंगे और अगर अभी कुछ देर है तो
                                                                   [ प्रेषक — श्रीनन्दिकशोरजी मित्तल ]
                              'प्यारे! राम रसायन पी ले'
                                     ( आचार्य श्रीभगवतजी दुबे )
            निन्दारस
       *****
                      पी
                                    कुटिल
                                                                      जहरीले।
                                                     त्याग
                             रहा
                                              तू,
                                                             वचन
                                              प्यारे!
                                                      राम
                                                              रसायन
                          रहे
                               जिस
                                          में,
                                               वेद-ऋचाएँ
                                                           लिखीं
                                                                   सुयश
                                                                          में।
            नारद,
                                     रस
                                               हैं,
            आगम-निगम,
                                        में
                                                                     शहदीले।
                            पुराणों
                                                        वचनामृत
                                              प्यारे!
                                                                        पी
                                                                              ले॥
                                                      राम
                                                              रसायन
                                             शारद-शेष
            शंकर
                    जिनका
                                    लगावैं,
                                                         सुयश
                                                                 नित
                                                                        गावैं।
                             ध्यान
            जहाँ
                            की
                                            होवे
                                                               सुनें
                                                                       हठीले।
                                    चर्चा
                                                     हनुमत
                                                                        पी
                                              प्यारे!
                                                                              ले॥
                                                       राम
                                                              रसायन
            रामचरित
                                      गाये,
                                                      ने
                                                                      पहुँचाये।
                                              तुलसी
                                                            घर-घर
                                                                        गीले।
            उनके
                                   कटते
                    भव
                           बंधन
                                                                        पी
                                              प्यारे!
                                                      राम
                                                              रसायन
                                                                              ले॥
```

## वर्तमान शिक्षा-व्यवस्थामें मूल्यपरकताकी आवश्यकता

( डॉ० श्रीरविशेखरजी वर्मा, एम०ए०, पी-एच०डी० )

हमारे देशमें गुरुकुल शिक्षा-व्यवस्थाकी तुलनामें स्वतंत्रता-प्राप्तिके पश्चातु भी हमारी शिक्षानीतिमें वर्तमान शिक्षा-व्यवस्थाका आरम्भ मात्र दो सौ वर्ष पूर्व अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। हाँ, समयके साथ विज्ञान

हुआ। गुरुकुल शिक्षा-व्यवस्थामें विद्यार्थी गुरुके आश्रममें एवं तकनीकके विकासके कारण पाठ्यक्रममें कुछ नये

रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। इसमें सांस्कृतिक एवं विषयोंका समावेश अवश्य हो गया; पर आध्यात्मिक

आध्यात्मिक विषयोंपर अधिक बल दिया जाता था:

क्योंकि उस समय शिक्षाप्राप्तिका उद्देश्य जीविकोपार्जन

न होकर ज्ञानार्जन ही था। इसमें अलगसे नैतिक

मूल्योंकी शिक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी;

क्योंकि शास्त्रोंके अध्ययन एवं गुरुकुल-प्रवाससे विद्यार्थी

स्वयं ही इन्हें ग्रहण कर लेता था। साथ ही तत्कालीन

समाजमें जीवन-मूल्योंका इतना ह्रास नहीं हुआ था।

अधिकतर व्यक्ति सावधानीपूर्वक सामाजिक नियमोंका

पालन करते हुए जीवन-यापन करते थे। एक-दूसरेकी स्वतन्त्रता एवं अधिकारोंका सम्मान करते थे। अनैतिक

कार्योंसे यथासम्भव दुरी बनाये रखते थे। वर्ण-व्यवस्थाका कठोरतापूर्वक पालन होनेके कारण समाजमें स्थिरता बनी रहती थी। सभी अपने निर्धारित कर्तव्योंका निष्ठापूर्वक

पालन करते थे. परस्पर सहयोग एवं सम्मानकी भावना थी। शिक्षाका लक्ष्य परम सत्ताकी प्राप्ति था, भौतिक

सुख-सुविधाओंके साधनोंका संग्रहण नहीं। त्यागी, तपस्वी, विद्वानों, संन्यासियोंका सर्वत्र सम्मान होता था,

सभी उनकी सेवा करनेका अवसर खोजते रहते थे। अंग्रेजी शिक्षाका आरम्भ ऐसे नवयुवकोंको प्रशिक्षित

करनेके उद्देश्यसे हुआ था, जो अंग्रेजी सरकारके कार्यालयोंमें निम्नस्तरीय प्रशासनिक कार्य कर सकें। पश्चिमी पद्धतिपर संचालित इन नवीन विद्यालयोंमें

अंग्रेजी भाषा तथा पश्चिमी सभ्यता-संस्कृतिपर अधिक बल दिया जाता था, जिसके कारण यहाँ शिक्षित भारतीय

युवक पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृतिको अपनी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृतिसे श्रेष्ठ मानने लगे। उन्होंने विदेशी

वेशभूषा, विचारधारा, खान-पान अपना लिया तथा

एवं नैतिक मूल्योंकी सदा अनदेखी ही की गयी है। समय-समय पर गठित शिक्षा सुधार आयोगोंने धार्मिक

िभाग ९२

एवं नैतिक शिक्षाको पाठ्यक्रममें सम्मिलित करनेकी अनुशंसा की, पर तत्कालीन सरकारोंने छद्म धर्मनिरपेक्षताकी दुहाई देकर इसकी सदा उपेक्षा ही की। आज भी शिक्षा

धन, सुख-सुविधा, सत्ता तथा सामाजिक सम्मान पानेका साधन बनी है। भारतीय विचारकों एवं शिक्षाविदोंने

वर्तमान शिक्षा-प्रणालीको नैतिक पतनका पथ प्रशस्त करनेवाली मानकर इसकी एक स्वरसे आलोचना की है। उनका मानना है कि यह मनुष्यको स्वार्थी, ईर्ष्यालु,

प्रतिद्वन्द्वी, निर्दयी एवं कठोर बनाने और सामाजिक विघटनके लिये उत्तरदायी है। विद्यार्थियोंपर भी कामका बोझ अत्यधिक बढ जानेके कारण उनका सामाजिक सरोकार छिन्न-भिन्न हो जाता है और वे एक-के-

बाद-एक होनेवाली प्रतियोगी परीक्षाके विषयमें ही चिन्तित रहते हैं। वर्तमान सामाजिक विकासने भी ऐसा वातावरण

निर्मित कर दिया है, जिसमें नैतिक और आध्यात्मिक मृल्योंकी सर्वत्र उपेक्षा हो रही है, जिसके परिणाम-

स्वरूप अपराध, भ्रष्टाचार, शोषण एवं संघर्षकी अभूतपूर्व बाढ्-सी आ गयी है। आज सुख एवं सफलताकी

कल्पनामें नैतिकता और आध्यात्मिकताका कोई स्थान नहीं रह गया है। युवा पीढ़ीपर पारिवारिक नियन्त्रण घटते जानेके कारण उनमें उच्छृंखलता बढ़ती जा रही

है। युवावर्गमें सामाजिक दायित्वकी भावना पुन: जाग्रत्

करनेके लिये विद्यालयोंद्वारा नैतिक एवं आध्यात्मिक मुल्योंका प्रशिक्षण दिया जाना अति आवश्यक है।

अपनी सभ्यता एवं संस्कृतिको हीन एवं रूढ़िवादी विश्व इतिहासके श्रेष्ठ पुरुषोंके चरित्रका अध्ययन Hinduism Discord Server https://dsc.jg/dharma | MADE WITH LOVE.BY Avinash/Sha मानकर इसको निन्दा एवं तिरस्कार करने लगे। करनेसे ज्ञात होता है कि व्यक्ति एवं समाजको उन्नितिक

<b>पंख्या ४</b> ] वर्तमान शिक्षा-व्यवस्थामें मृ	्ल्यपरकताकी आवश्यकता ३१
**************************************	<u>**********************************</u>
लिये कुछ गुण आवश्यक हैं। ये गुण मानवताकी	एवं सामाजिक समस्याओंका निदान कर सकते हैं।
कसौटियाँ हैं। इन्हीं गुणोंको जीवनमूल्य कहते हैं। मूल्यसे	आध्यात्मिक विकास ही हमारे नैतिक जीवनको व्यावहारिक
यहाँ तात्पर्य है जीवनमें सत्य-असत्य एवं ग्राह्म-त्याज्य-	बनाता है। हमारे भीतर स्थित आत्मा ही हमें ज्ञान,
सम्बन्धी विश्वास। जीवन-मूल्य सनातन एवं चिरन्तन हैं।	आनन्द, उत्कृष्टता, पूर्णता एवं शुद्धताका दिग्दर्शन
दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाविदों एवं समाजशास्त्रियोंने	कराती है। हमारी आत्मचेतनाके विकासका स्तर हमारी
इन मूल्योंको आध्यात्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक,	इच्छा निर्धारित करता है। यदि हमारी आत्मचेतना हमारी
सामाजिक एवं व्यक्तिगत श्रेणियोंमें विभाजित करके इन्हें	देह एवं मनतक सीमित है तो जीवनके प्रति हमारा
समझने और प्रेषित करनेके सम्बन्धमें अपने भिन्न-भिन्न	दृष्टिकोण आत्मकेन्द्रित होकर हमें उन इच्छाओंकी ओर
दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें इन्हें दैवी	अग्रसर करता है, जिनकी कभी तृप्ति होती ही नहीं।
सम्पदाके नामसे अभिहित किया गया है। ये मानव	फलस्वरूप हमारा जीवन तनाव एवं विसंगतियोंसे भर
जीवनको मूल्यवान् बनानेकी क्षमता रखते हैं, इस कारण	उठता है। परंतु जब हमें भय, दु:ख, ईर्ष्या, क्रोध
इन्हें जीवन-मूल्य कहा जाता है। भारतीय संस्कृतिमें द्वि-	आदिकी निस्सारताका ज्ञान होता है तो हम सर्वत्र
स्तरीय मूल्य-प्रणालीकी कल्पना की गयी है। इसे पुरुषार्थ	समभावका दर्शन करने लगते हैं। हमारे सामाजिक
कहते हैं। इसमें पहले स्तरपर काम, अर्थ और धर्मको	व्यवहारमें खुलापन आ जाता है और हम एक-दूसरेके
रखा गया है। काम और अर्थपर धर्मका अंकुश होता	सुख-दु:खकी चिन्ता करने लगते हैं। यहींसे सामाजिक
है, इसके अभावमें ये निरंकुश होकर विवेकको कुंठित	एवं नैतिक मूल्योंका जन्म होता है और समाजका
कर देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप छल-कपट, भ्रष्टाचार,	उत्थान होता है। प्राचीनकालसे ही भारतीय शास्त्रोंने
तनाव एवं कटुताका जन्म होता है और सारा व्यक्तित्व	सत्य, शौच, क्षमा, साहस, ज्ञान, धृति, करुणा, सन्तोष,
विखंडित हो जाता है। जब व्यक्तिमें काम और अर्थजनित	आत्मानुशासन, स्वाध्याय, निर्भयता आदि मूल्योंके पालनपर
भोगोंके प्रति वितृष्णा जन्म लेने लगती है तो वह मोक्षकी	बल दिया है। दूसरे शब्दोंमें कह सकते हैं कि व्यक्तिको
ओर उन्मुख हो जाता है। इच्छाओंके दुश्चक्रसे मुक्ति ही	सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय बननेका प्रयास करना चाहिये,
मोक्ष है। यह इसी संसारमें उपलब्ध है। बाह्य एवं	इन्हींके अन्तर्गत ये सारे गुण आ जाते हैं।
आन्तरिक परिस्थितियोंसे अप्रभावित आनन्द, शान्ति और	आजके युगमें जनसंचारके नवीनतम माध्यमोंका
जागृतिका नाम ही मोक्ष है।	प्रचार-प्रसार अत्यधिक बढ़ गया है। समाचारपत्र सनसनी
ध्यान रहे, व्यक्तिके आन्तरिक विकासके अनुसार ही	फैलानेमें एक-दूसरेसे पीछे नहीं रहना चाहते। वे
उसका जीवन और आचरण नियन्त्रित होता है। इसीमें	राजनीति, भ्रष्टाचार और अपराधके साथ फैशन एवं
नैतिक मूल्योंका महत्त्व है और मानव विकासकी आदर्श	सिनेमाई चमक-दमकके समाचारोंसे भरे होते हैं। अश्लील
स्थितितक पहुँचनेके लिये यह नियन्त्रण है भी आवश्यक।	एवं उत्तेजक विज्ञापनों द्वारा युवावर्गकी प्रसुप्त इच्छाएँ
इसी नैतिक शक्तिके बलपर स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व, अहिंसा,	उत्तेजितकर उन्हें विलासिताके महँगे उपकरण खरीदनेके
न्याय-जैसे सामाजिक मूल्योंके साथ-साथ प्रेम, नि:स्वार्थता,	लिये उकसाते हैं। इससे युवा वर्गकी रुचि विकृत हो
शान्ति एवं सुखकी भी अभिव्यक्ति होती है।	जाती है। जो युवा अपनी इच्छापूर्तिमें सफल नहीं हो
ये नैतिक मूल्य ही आध्यात्मिक विकासका द्वार	पाते, वे बहुधा अपराध-जगत्की ओर मुड़ जाते हैं।
खोलते हैं; हमारे भीतर स्थित देवत्वको जाग्रत् करते हैं	लौकिक आनन्द एवं इन्द्रिय सुखके प्रति आकर्षण उन्हें
और हमें परम सत्यकी ओर अग्रसारित करते हैं।	जीवनके उद्देश्यसे स्खलित कर देता है। वे नैतिक
आध्यात्मिक विकासके द्वारा ही हम अपनी व्यक्तिगत	पतनकी ओर बढ़ने लगते हैं। नैतिक मूल्योंकी शिक्षा

युवाओंको इन्द्रियनिग्रहका पाठ सिखाती है, जिससे वे उपस्थित करनेमें भी वे असमर्थ हैं। अपने अध्ययनपर ध्यान केन्द्रितकर अपना उज्ज्वल राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्रमें पर्याप्त शक्ति और

कमानेकी धुनमें अपने बालकोंकी ओर पूरा ध्यान सुख, सफलता एवं सुरक्षाके अतिरिक्त हम किसी नहीं दे पाते। वे धनके बलपर उनकी लौकिक इच्छाएँ औरके बारेमें सोच भी नहीं पाते और यही स्वार्थपरता पूरी करनेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ लेते सामाजिक जीवनमें भ्रष्टाचार, अपराध, शोषण, हैं। परिणामस्वरूप बालक अपने सहपाठियोंकी देखा- असहिष्णुता एवं कटुताको जन्म देती है। ध्यान रहे

समझाया जाता तो वे मनकी शान्तिके लिए आध्यात्मिक शान्ति, आनन्द एवं तृप्ति तभी आ सकती है जब मूल्योंके विकासकी ओर उन्मुख होते और नश्वर हम इन्द्रियोंकी दासतासे मुक्त हो जायँ। अपने निर्धारित पदार्थोंकी ओर कम-से-कम आकर्षित होते। कार्यमें उत्कृष्टताकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहकर चिरित्र-निर्माणमें शिक्षककी भूमिका महत्त्वपूर्ण होती हम सच्ची समाज-सेवा कर सकते हैं। विद्यार्थी-

वृत्ति अपनाये हुए हैं। वे न तो अध्ययनशील हैं और न विकासके प्र ही कर्तव्यनिष्ठ। विद्यार्थियोंके लिये अनुकरणीय आदर्श व्यवस्थामें

भविष्य सुनिश्चित कर सकें।

घर-परिवारमें बालक अपने माता-पिताके तथा

विद्यालयमें अपने शिक्षकोंके आचरणसे नैतिक मूल्योंकी

शिक्षा ग्रहण करते हैं, पर अधिकतर माता-पिता धन

देखी निरर्थक, पर मूल्यवान् वस्तुएँ खरीदते रहते हैं,

जिद्दी और अड़ियल बन जाते हैं और अन्तमें परिवारके

विनाशका कारण बनते हैं। यदि उन्हें नैतिक मूल्योंकी

शिक्षा दी जाती, आत्मनिग्रह और संयमका महत्त्व

है; वह राष्ट्रनिर्माता होता है, वह विद्यार्थियोंके मनमें

ज्ञानकी पिपासा जाग्रत्कर उन्हें आत्मकल्याणका मार्ग

दर्शाता है। पर आज बहुत-से शिक्षक अपना यह कर्तव्य

भूल गये हैं और मात्र धन कमानेकी इच्छासे ही यह

विकासके प्रति मिथ्या सिद्ध होंगे, अत: वर्तमान शिक्षण– व्यवस्थामें मूल्यपरकताकी अत्यन्त आवश्यकता है।

समद्भि प्राप्त कर लेनेपर भी हम इन्द्रियोंके दास बने

हुए हैं। इन्द्रियसुख-प्राप्तिकी इच्छा द्वेष, क्रोध, भय, अहं एवं अविवेकको तथा अतृप्त लौकिक इच्छाएँ

असन्तोष एवं स्वार्थपरताको जन्म देती हैं। अपने

शुचिता, शालीनता एवं नैतिकता समाजकी नींवके

पत्थर हैं—ये ही राष्ट्रका जीवन हैं। सांस्कृतिक

विकासके अभावमें समाजका विकास सम्भव नहीं,

संस्कृति ही चरित्र-निर्माण करती है। राष्ट्रीय जीवनमें

जगतुमें व्याप्त स्वच्छन्दता एवं असंयमपर नैतिकताद्वारा

ही अंकुश लगाया जा सकता है। यदि हम अपनी

शिक्षण–संस्थाओंमें नैतिक मूल्योंके प्रशिक्षणकी व्यवस्था नहीं कर पाते तो हम अपने अबतकके ऐतिहासिक

भाग ९२

प्रेरक-प्रसंग— दुर्जन-संगका फल कोई राजा वनमें आखेटके लिये गया था। थककर वह एक वृक्षके नीचे रुक गया। वृक्षकी डालपर एक कौआ बैठा था। संयोगवश एक हंस भी उड़ता आया और उसी डालपर बैठ गया। कौएने स्वभाववश बीट कर

दी, जो राजाके सिरपर गिरी। इससे क्रोधमें आकर राजाने धनुषपर बाण चढ़ाया और कौएको लक्ष्य करके छोड़ दिया। धूर्त कौआ तो उड़ गया; किंतु बाण हंसको लगा और वह लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ा।

देया। धूर्त कौआ तो उड़ गया; कितु बाण हसको लगा और वह लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ा। राजाने आश्चर्यसे कहा—'अरे! इस वनमें क्या सफेद कौए होते हैं?'

मरते हंसने उत्तर दिया—'राजन्! मैं कौआ नहीं हूँ। मैं तो मानसरोवरवासी हंस हूँ; किंतु कुछ क्षण कौएके समीप बैठनेका यह दारुण फल मुझे प्राप्त हुआ है।' संत-चरित भक्त जलारामजी

भक्त जलारामजी

#### ( शास्त्री श्रीमंगलजी उद्धवजी पुरोहित) सत्पुरुषोंके वचन अन्यथा नहीं होते। प्रभुकी लीला



संख्या ४ ]

पापं तापं च दैन्यं च घ्नन्ति सन्तो महाजनाः॥ 'गंगा पाप, चन्द्रमा संताप तथा कल्पवृक्ष दरिद्रताका

नाश करते हैं अर्थात् ये सभी एक-एक विषयके नाशक हैं; परंतु संत-महापुरुष पाप, ताप और दारिद्र्य—तीनोंका

ऐसे सत्पुरुष इस कराल कलिकालमें भी हैं। भक्त, महात्मा और ज्ञानीजनोंका उद्गम-स्थान यह आर्यावर्त्त कभी इनसे सर्वथा खाली नहीं हो सकता। आज हम

एक साथ ही विनाश कर देते हैं।'

जिन वीतराग भक्तका चरित्र-चित्रण करने जा रहे हैं, इनका जन्म सौराष्ट्र-देशके वीरपुर गाँवमें हुआ था। ये लोहाणा क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका

पुत्रका नाम बोधाभाई था। प्रथम पुत्रके जन्मसे पाँच वर्ष पश्चात् ठाकुरके गृहमें एक महात्मा अतिथि आये। प्रधान ठाकुरने उन महात्माका यथोचित आतिथ्य किया।

नाम था—प्रधान और माताका राजबाई। दम्पतीके बड़े

महात्माने प्रसन्न होकर ठाकुरसे वरदान माँगनेको कहा। ठाकुरने वरदानरूपमें अपने वंशमें भी महात्माओंकी सेवा

करनेवाला एक पुत्र माँगा। महात्मा प्रसन्नचित्तसे 'तथास्तु'

कोई आपकी नहीं सुनेगा।'

अन्ततोगत्वा साधु-मण्डली जलारामजीके यहाँ

अत्यधिक प्रेम था। भक्त जलारामजी बचपनसे ही सदाचार-पालन, सत्पुरुषोंकी सेवा, सत्संग-सेवन और नाम-जपमें रुचि रखते थे। थोडे ही समय बाद जलारामजीके माता-पिता

अवर्णनीय है। वि॰ संवत् १८५३ की कार्तिक शुक्ला सप्तमी, सोमवारको राजबाईके उदरसे एक पुत्ररत्नका जन्म हुआ। इनका नाम जलाराम रखा गया। बाल्यकालसे ही जलारामजी तेजस्वी थे। पुत्रके ऊपर माता-पिताका

केवल बालाजी नामक एक चाचा ही थे। उनके कोई पुत्र न था, इसलिये उन्होंने जलारामजीको अपने साथ रख लिया। चाचाने जलारामजीको दुकानका काम सौंप

रखा था, अतएव वे भगविच्चन्तनपरायण होकर दूकानका

काम करते हुए ही भगवत्सेवा भी किया करते। 'अद्वेष्टा

परलोकवासी हो गये। अब जलारामजीके पोषकवर्गमें

**सर्वभूतानाम्'**—गीताका यह मन्त्र उनके जीवनका आदर्श था। इस कारण बालसूर्यकी किरणोंके समान जलारामजीका सुयश चारों ओर फैलने लगा।

एक दिनकी बात है, प्रात:कालका समय था। ब्राह्मण शिवालयमें वेद-मन्त्रोंसे पुजन कर रहे थे। भक्तजन हरिनामका उच्चारण कर रहे थे, श्रमिक लोग अपने-अपने कार्यमें व्यस्त थे और वैश्यवर्ग अपनी-

एक मण्डली गाँवमें आयी। अच्छे-अच्छे व्यापारियोंसे साधुओंने सीधे (भोजन-सामग्री)-की याचना की, परंतु प्रात:काल होनेके कारण किसीने उनकी बातपर ध्यान नहीं दिया। बोहनीके समय देनेका नाम किसको सुहाता?

अपनी दूकानोंको झाड़ रहा था। इसी समय साधुओंकी

साधु लोग निराश होकर जाने लगे, तभी किसीने उनसे कहा—'महाराज!' इस बाजारमें जलारामकी दुकानपर जाइये। वह भक्तोंकी सेवा किया करता है। यहाँ और

पहुँची। मण्डलीके मुखियाने पूछा—'जला भगतकी

कहकर यात्रार्थ निकल गये।

िभाग ९२ दुकान यही है?' 'और इस लोटेमें ?' 'आपके दासकी यही दूकान है, महाराज! क्या 'इसमें जल है।' आज्ञा है?' जलारामजीने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया। चाचाजीने गुडकी गठरी खोलकर देखी तो उसमें सचमुच काठके टुकड़े ही थे और लोटा जलसे भरा था। 'जलाराम! यदि तेरी इच्छा हो तो सब संतोंके लिये सीधा दे दे। हमलोग वृन्दावनसे आ रहे हैं और इस दृश्यको देखकर उस बनिये तथा अन्य उपस्थित गिरनारकी यात्रा करने जा रहे हैं। यहाँसे भोजन करके व्यक्तियोंको बड़ा विस्मय हुआ। चाचाजीका क्रोध चलनेका विचार है।' संतने कहा। सर्वथा शान्त हो गया। अब उन्होंने नम्र आवाजमें साध्-महात्माओंको भोजन कराकर स्वयं भोजन पूछा—'कहाँ जा रहा है?' करना तो जलारामजीका नित्यका नियम ही था। इसे 'चाचाजी! इस गाँवके बाहर ठहरी हुई साधु-देखकर बगलका एक बनिया इनको बड़ी क्रूर दृष्टिसे मण्डलीके लिये यह सामान पहुँचाने जा रहा हूँ।' देखता था और मन-ही-मन कुढ़कर कहा करता—'यह 'अच्छा' कहकर चाचाजी दूकानपर चले गये और जलिया बाला चाचाकी दुकानका सत्यानाश कर डालेगा।' जलारामजी साधुओंके पास पहुँचे। कहना न होगा, आज तो साधुओंकी इस जमातको देखते ही वह और साधुओंके पास जानेपर घी और गुड़ अपने मूल स्वरूपमें भी जल-भुन गया। जलारामजीने अपने सहज स्वभावके बदल गये थे। भगवान् क्या नहीं कर सकते ? जलारामकी अनुसार साधुओंके लिये आटा, दाल, चावल आदि वाणी भी झूठी नहीं हुई और चाचाका सन्देह भी दूर सामान तौल दिया। हो गया। साधुओंके पास घीका कोई पात्र नहीं था, इसलिये इस घटनासे भक्तजीके हृदयमें कितना आनन्द हुआ जलारामजीने अपने ही लोटेमें पाँच सेर घी भर दिया होगा, इसका अनुमान स्वयं पाठक लगा सकते हैं। सच और वह घी तथा गुड़ स्वयं उठाकर साधुओंके ठहरनेकी है, भक्तवत्सल भगवानुको अपने भक्तके लिये सब जगहपर पहुँचानेके लिये चल पड़े। बगलका बनिया यह प्रकारकी व्यवस्था करनी पड़ती है। जलारामजी उस सब देख रहा था। जलारामजीको जाते देख वह तुरंत दिनसे और भी उत्साहके साथ साधु-सेवा करने लगे। बाला चाचाके पास पहुँचा और उन्हें सारा हाल सुनाते हुए उसने कहा—'चाचाजी! जल्दी चलो और देखो, 'जलाराम किसका नाम है?' आगन्तुक एक जलिया सारी दूकान साधुओंको लुटाये देता है।' साधुने दुकानदारोंसे प्रश्न किया। बाला चाचा शीघ्र ही दुकानकी ओर चल पडे। 'बगलकी ही दूकान जलारामकी है।' उसी द्वेषी मार्गमें ही उनकी भेंट जलारामजीसे हो गयी। चाचाका बनियेने उत्तर दिया। स्वभाव जलारामजीसे छिपा नहीं था; अतएव उन्हें देखते साधु जलारामकी दूकानपर आये। भक्तजीने उन्हें ही जलारामजी सूख-से गये। उन्होंने मनमें सोचा-देखते ही नम्रतापूर्वक प्रणाम किया और पूछा—'क्या 'आज चाचाजी अवश्य दण्ड देंगे। खैर, जैसी श्रीरामकी आज्ञा है, महाराज!' इच्छा।' बाला चाचाके नेत्रोंसे क्रोधके मारे मानो अंगारे भक्तराज! वस्त्रके बिना दु:ख पा रहा हूँ। एक झर रहे थे। उन्होंने कड़ककर पूछा—'जलिया! इस टुकड़ा वस्त्र साफीके लिये दे दें। साधुने कहा। धोतीमें क्या जलाया है?' जलारामजीने प्रसन्न होकर खादीके थानमेंसे पाँच सत्यवादी जलारामजीके मुखसे मानो किसीने बरबस हाथका एक टुकडा फाडकर दे दिया। साधु बाबा प्रसन्न कहला दिया—'काठके टुकड़ोंके अतिरिक्त और क्या होकर बाजारमें 'भक्त और भगवान्की जय' बोलते हुए ज<del>िल्लाक्रिक्र के septed இ</del>is epted spiral hittps://dsc.gg/dharma a ரிம் MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha संख्या ४ ] भक्त जलारामजी दुर्जन स्वयं दु:ख उठाकर भी सत्पुरुषोंको बाधा चलानेके लिये स्त्री-पुरुष—दोनोंको योग्य होनेकी पहुँचानेमें कोई कोर-कसर नहीं रखते। वे सदा इसी आवश्यकता है। ईश्वर-कृपासे जलारामजीकी पत्नी चेष्टामें रहते हैं कि कब कोई अवसर हाथ लगे और भी उन्हींकी भाँति धार्मिक बुद्धिवाली थीं। उनका नाम था—वीरबाई। वीरबाई स्वभावसे सुशील और अपना काम बनाया जाय। आज उस द्वेषी बनियेको फिर पतिव्रता थीं। जिस तरह भक्तजी श्रीराम-भजनमें मस्त मौका मिला। उसने विचार किया—'अब देखें जलिया थे, उसी तरह वीरबाई भी भजन और पतिसेवामें कौन-सा उपाय करता है?' खादीका थान बीस हाथ था। बाला चाचाको प्रत्यक्ष दिखाऊँगा कि इसी तरह यह लीन रहती थीं। सब कुछ उडा देता है।' कुछ दिनोंसे भक्तजीके मनमें यह चिन्ता हो रही दूसरे दिन बाला चाचा दूकानपर आये। जलारामजी थी कि मेरा बर्ताव चाचाजीको अच्छा नहीं लगता, ऐसी अभीतक साधु-सेवासे निवृत्त नहीं हुए थे। वह बनिया दशामें मैं क्या करूँ ? क्या अलग हो जाऊँ ? किंतु मेरा भी आज और दिनोंसे पहले ही दूकानपर आ डटा था। निर्वाह कैसे होगा? इसी बीच एक दिन गीताका पाठ आज उसे अपनी सफलताकी पूरी आशा थी। उसने करते समय उनकी दृष्टि नौवें अध्यायके बाईसवें बाला चाचाको अकेले दुकानपर देखकर कहा—'चाचाजी! श्लोकपर पडी— आप कभी मेरा कहना नहीं सुनते। आज जरा खादीका अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। थान तो देख लो। ऐसे ही आपका सब कुछ मुफ्तमें चला तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ जाता है।' भक्तजी जाग उठे। सोचने लगे—'हरि! हरि!! तबतक जलारामजी भी आ गये। चाचा वस्त्र यह क्या? स्वयं भगवान् ही आज्ञा दे रहे हैं तो फिर नापने लगे। 'यह क्या?' आश्चर्यके साथ चाचाने मैं क्यों भ्रममें पड़ा हूँ ? क्या प्रभु मेरे आधार नहीं ?' वे कहा-'यह थान तो बीस ही हाथका था, अब पचीस रोमांचित हो गये। उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। हाथ कैसे हो गया?' उन्होंने फिर नापा, किंतु वही दूसरे ही दिन जलारामजी बालाजी चाचासे अलग हो पचीस-का-पचीस हाथ निकला। उस बनियेने फिर भी गये और निश्चिन्त होकर अन्नदान, साधुसेवा एवं सत्संग दबती जबानसे कहा—'चाचाजी! चार-पाँच करने लगे। हाथ .... साधुको ....।' जलारामजीने अपने यहाँ एक अन्नसत्र—सदाव्रत खोल दिया, जहाँ अनेकों भूखे नर-नारियोंको भोजन 'तू चुप रह, तू मेरे जलियासे द्वेष रखता है। चल मिलने लगा। उसी समयमें संवत् १९३४ का भयंकर अकाल पडा था। ऐसे कठिन कालमें भी श्रीहरि-कृपासे यहाँसे।' बीचमें ही चाचाजी बोल उठे। बनिया चुपचाप चला गया। उसने भक्तिका प्रभाव जाना और उस दिनसे वह अन्नसत्र यथावत् चलता ही रहा। उसने जलारामजीको न सतानेकी प्रतिज्ञा कर ली। वि०संवत् १९३७ माघ कृष्ण दशमीके दिन भक्तराज जलारामजीने साकेत-निवास किया। आज भी जनताको मनुष्य स्वयं कितना ही गुणवान्, बुद्धिमान् और ज्ञान देनेके लिये उनकी कीर्तिमयी देह वर्तमान है और सावधान क्यों न हो, यदि उसकी धर्मपत्नी सद्गुणवती आगे भी रहेगी। आइये, भगवान्से प्रार्थना करें कि ऐसे संत-नहीं है तो उसका यश संसारमें उतना नहीं बढ़ महात्मा जगत्के कल्याणके लिये सदा इस पवित्र सकता। जिस तरह गाडीमें दोनों पहियोंको समान और दुढ होनेकी आवश्यकता है, उसी तरह गृहस्थी भारत-भूमिपर अवतरित होते रहें।

वल्लभसम्प्रदाय और उसके अष्ट कवि

# ( श्रीआनन्दकुमार शुक्ला, वरिष्ठ शोध अध्येता )

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

मध्यकालमें कृष्णभक्तिके प्रचार-प्रसारमें वल्लभ-सम्प्रदाय और उसके अष्टछाप कवियोंने महत्त्वपूर्ण

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ योगदान दिया। वल्लभसम्प्रदायके प्रधान आचार्य और

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

संस्थापक महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने सन् १५१९ ई० के

लगभग अपने मतका प्रधान केन्द्र श्रीनाथजीके मन्दिरको

बनाया। यह मन्दिर उनके ही एक शिष्य पूरनमल खत्रीद्वारा उसी वर्ष बनवाया गया था। वल्लभाचार्य

मूलत: दक्षिणसे थे और राजा कृष्णदेव रायके दरबारमें

शास्त्रार्थद्वारा विभिन्न विद्वानोंको पराजितकर 'महाप्रभु की पदवीसे विभूषित थे (१५६५ वि०)। दर्शनके क्षेत्रमें

उनका मत शुद्धाद्वैतवादके नामसे प्रचलित हुआ। उनका जन्म संवत् १५३५ विक्रमी, वैशाख कृष्ण एकादशीको रायपुरके निकट चम्पारण्यमें विष्णुस्वामी मतावलम्बी

भक्त श्रीलक्ष्मण भट्टके यहाँ हुआ। इनकी माँका नाम 'इलम्मागारु' था। कहते हैं कि अल्प अवस्थामें ही ये देशाटनको निकल पड़े और रामानुजाचार्यके समान भारतके बहुतसे भागोंमें पर्यटन और शास्त्रार्थद्वारा अपने

मतका प्रचार किया। देशाटनसे पूर्व ही इनका विवाह श्रीदेवभट्टजीकी कन्या महालक्ष्मीसे हुआ। महालक्ष्मीसे इन्हें दो पुत्र हुए—गोपीनाथ और विद्वलनाथ।

शुद्धाद्वैतवाद शुद्धाद्वैत=शुद्ध+अद्वैत। श्रीवल्लभाचार्यजीके अनुसार कार्य-कारणरूप जगत् ब्रह्म ही है। ब्रह्म अपनी इच्छासे ही

जगत् रूप बना है। जगत् न मायिक है और न भगवान्से

भिन्न। यह ब्रह्मका अविकृत परिणाम है। उनके अनुसार

जिस प्रकार बूँद और समुद्रमें तात्त्विक दृष्टिसे कोई भेद

नहीं है, परंतु बूँद अपने उद्भव और विकासके लिए

समुद्रपर निर्भर करती है। उसी प्रकार जीव भी ब्रह्मके

अनुग्रहपर निर्भर है। इसी अनुग्रहको उन्होंने पुष्टिकी

संज्ञा दी है। इसीलिये इनके सिद्धान्तको पुष्टिमार्ग भी कहा जाता है। भगवान् या ब्रह्मका अनुग्रह प्राप्त करनेका सिद्धान्त यद्यपि वल्लभाचार्यका नवीन सिद्धान्त

नहीं है। इसके प्राचीन सूत्र गीतामें भी मिलते हैं—

भाग ९२

(गीता १८।६२, ६६)

पुष्टिकी व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा— पुष्टिः किं?—पोषणम्। पोषणम् किं ?—तद् अनुग्रहः। भगवत्कृपा।

'पोषण'के भावको भक्तिके दो रूपोंद्वारा समझा जा सकता है-पहला साध्यरूप और दूसरा साधनरूप।

साध्यरूपमें भक्त अपनेको ईश्वरकी कृपापर छोड़ देता

है। जबिक साधनरूपकी भक्तिमें भक्तको ईश्वरतक पहुँचनेका प्रयत्न करना होता है। साध्यरूपकी भक्ति ही

पुष्टिमार्गियोंमें स्वीकृत है। वल्लभाचार्यने जीवको ईश्वरतक पहुँचनेका अर्थात् सत्, चित् और आनन्दकी सम्मिलित अवस्थाके लिये तीन मार्गींका उल्लेख किया है—

१. मर्यादामार्ग, २. प्रवाहमार्ग और ३. पुष्टि-मार्ग । और इन तीनों मार्गोंमें पुष्टिमार्गको सर्वाधिक महत्त्व दिया, जो ईश्वरकृपा अर्थात् अनुकम्पापर निर्भर

है— 'पुष्टिमार्गोनुऽग्रहैकसाध्यः, कृष्णानुग्रहरूपा हि पुष्टि:, अनुग्रह: पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थिति:।'

पुष्टिमार्गीय भक्ति कर्मकाण्डमुक्तः; ईश्वरीय अनुकम्पायुक्त रागानुरागा प्रेमलक्षणा भक्ति है, जिसका पल्लवन वल्लभाचार्यके बाद अष्टछाप कवियोंने मिलकर

किया। इन कवियोंने अपनी भक्ति एवं काव्यके माध्यमसे स्वयंको भगवत्कृपापर छोड़ उनकी अनुकम्पा या अनुग्रह

प्राप्त करनेका ही प्रयत्न किया।

आचार्य वल्लभने श्रीकृष्णको ही परमपिता परमेश्वर

माना। वे नित्य, स्वतन्त्र और सर्वज्ञ हैं। सर्वत्र व्याप्त

तथा नाशरहित हैं। वे पारमार्थिक सगुण रूपमें लीलाएँ करते हैं। उनकी लीलाएँ अप्राकृत हैं; जो उन्हींके समान

संख्या ४] वल्लभसम्प्रदाय और उसके अष्ट कवि 96 गोपालकी ही भक्ति करते थे। किसी अन्यके सम्मुख हैं। श्रीकृष्णमें ही तीनों गुण सत्-चित्-आनन्दकी व्याप्ति है, जो शाश्वत है। अतः जीवको उन्हींकी इन्हें सिर झुकाना पसन्द नहीं था। इस सन्दर्भमें इन्होंने अनुकम्पा या अनुग्रह प्राप्त करनेका सुझाव दिया। अपने संतापको निम्न पदसे व्यक्त किया— जिसके लिये उन्होंने पुष्टिको आवश्यक बताया। वैसे तो संतन को कहाँ सीकरी सों काम? वल्लभाचार्यने कई ग्रन्थ लिखे, जिनमें पूर्वमीमांसा भाष्य, आवत जात पनहियाँ टूटी, बिसरि गयो हरिनाम। उत्तरमीमांसा या अणुभाष्य, सुबोधिनी टीका, तत्त्वदीप जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम निबन्ध, पुरुषोत्तमसहस्रनाम, शृंगाररसमण्डन, विद्वन्मण्डन कुंभनदास लाल गिरधर बिनु और सबै बेकाम॥ आदि मुख्य हैं। परंतु उनके शुद्धाद्वैतवादका प्रतिपादक इनके द्वारा कोई ग्रन्थ नहीं रचा गया, केवल कुछ ब्रह्मसूत्रका 'अणुभाष्य' ही है। पद ही वार्ताग्रन्थोंमें मिलते हैं। अष्टछाप कवि २. सूरदास अष्टछाप कवियोंमेंसे चार सूरदास, कुम्भनदास, सूरदासजीका जन्म वैशाख शुक्ल पंचमी दिन परमानन्ददास तथा कृष्णदास वल्लभाचार्यजीके शिष्य मंगलवारको संवत् १५३५ वि०में रुनकता ग्राममें हुआ। थे। बाकी चार गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास ये कृष्णके अनन्य भक्त थे। परम सत्य श्रीकृष्णके बाल-नन्ददास वल्लभाचार्यजीके कनिष्ठ गोपालरूपका जैसी तन्मयतासे वर्णन सूरदासजीने किया, विट्ठलनाथके। सन् १५६५ई०में विट्ठलनाथजीने अष्टसखा वैसा हिन्दी साहित्यमें फिर कभी दुबारा न हुआ। या अष्टछापकी स्थापना की। जो श्रीनाथजीकी सेवाके वर्णनोंमें वात्सल्य और प्रेमकी चाशनी है। इनके विषयमें आठ प्रहरोंके लिए नियुक्त किये गये। ये आठ प्रहर प्रसिद्ध गायक तानसेनने कहा है— हैं—शुंगार, मंगलाचरण, ग्वाल, राजयोग, उत्थापन, किंधौ सूर को सर लग्यौ, किंधौ सूर की पीर। भोग, सन्ध्या-आरती तथा शयन। इन्हीं आठ प्रहरोंकी किंधौ सूर को पद लग्यौ, तन-मन धुनत सरीर॥ सेवाके लिये मन्दिर-प्रांगणमें ये भक्त कवि पदोंको इनके द्वारा रचित तीन ग्रन्थ मिलते हैं-गाया करते थे। इनके पदोंसे भक्ति और साहित्यकी सुरसागर, सुरसारावली (सं०१६०२) और साहित्य-ऐसी स्वर्णिम लहर उठी, जिससे हिन्दी साहित्यका लहरी (सं०१५५०)। सम्पूर्ण मध्यकाल भीग गया। इस कवियोंका संक्षिप्त सूरसारावलीमें लम्बे फगुआ (होली) गीत हैं। साहित्य-लहरीमें ११८ दृष्टकूट पद हैं, जिनका विषय विवरण इस प्रकार है-नायिकाभेद है। जो सम्भवतः कृष्णदासजीके आग्रहके १. कुम्भनदास हरिरायकृत भावप्रकाशके अनुसार कुम्भनदासजीका उपरान्त लिखा गया। परंतु इनकी प्रसिद्धिका मूल जन्म गोवर्धनके निकट जमुनावती ग्राममें संवत् १५२५ भागवत पुराणका आधार लिये हुए सूरसागर ही है। विक्रमी कार्तिक कृष्ण एकादशीको हुआ। ये अष्टसखाओंमें इसीमें निर्गुणपर सगुणकी विजय दर्शाता प्रेमरसपरिपूर्ण आयुकी दृष्टिसे सबसे बड़े थे। इनके सात पुत्र थे, जिनमें भ्रमरगीत-प्रसंग भी है। सूरसागरकी काव्यतासे प्रभावित सबसे छोटे चतुर्भजदास थे। चतुर्भजदास बादमें विट्रलनाथसे होकर आचार्य रामचन्द्र शुक्लने कहा है—'यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि आगे होनेवाले दीक्षा लेकर पुष्टिमार्गमें प्रवृत्त हुए। कहते हैं, एक बार सम्राट् अकबरने इनकी विद्वत्तासे प्रभावित होकर इन्हें कवियोंकी शृंगार और वात्सल्यकी उक्तियाँ सूरकी फतेहपुर सीकरी बुलाया। न चाहते हुए भी इन्हें जाना जुठी-सी जान पडती हैं।' पड़ा और बादशाहके सम्मुख सिर झुकाना पड़ा। संवत १६२० के लगभग मथुराके पारसौली ग्राममें जिसका बादमें इन्हें बड़ा दु:ख हुआ; क्योंकि ये गिरिधर विट्ठलनाथजीके सम्मुख सूरदासजीकी मृत्यु हुई।

भाग ९२ सुरदासजीने अपने पदोंमें आसक्तिके ग्यारह रूपोंका द्विज बुलाइ दक्षिणा दई, मंगल जस गावै। वर्णन किया है, परंतु सख्य, वात्सल्य, कान्ता, तन्मया परमानन्द प्रभु लाडिली, सुख सिंधु बढ़ावै॥ और विरहासक्तिके वर्णनोंमें मिठास ज्यादा है। ४. कृष्णदास नारदभक्तिसूत्रके अनुसार जीवकी प्रभुसे आसक्तिके ग्यारह इनका जन्म गुजरात राज्यके चिलोतरा ग्राममें रूप हैं—गुणमाहात्म्यासिक, रूपासिक, पूजासिक, हुआ था। सं० १५६६ वि०के लगभग मथुरामें स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वल्लभाचार्यजीने इन्हें दीक्षा दी। अपनी प्रशासनिक रुचिके कारण ही ये श्रीनाथजीके मन्दिरके अधिकारी वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति और परमविरहासक्ति। और इसी परमविरहासक्तिसे भ्रमरगीतके पदपर विभूषित हुए थे। कहते हैं कि वल्लभाचार्यजीकी सारे पद भरे हैं-मृत्युके बाद उनके पौत्र पुरुषोत्तमको गद्दीपर बिठानेके लिये इन्होंने विट्ठलनाथजीसे विवाद भी कर लिया मधुबन तुम कत रहत हरे। था। मन्दिरके वैभव और ऐश्वर्यकी वृद्धिमें इनका ही विरह वियोग श्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे॥ कृष्णकी बाल-लीलाओंके पदोंको देखकर नहीं महत्त्वपूर्ण योगदान था। इनका गोलोकवास लगभग लगता कि सूरदास जन्मान्ध थे। ब्रज और अवध प्रदेशमें संवत् १६६५ वि० में हुआ। कहते हैं, अन्त समयमें प्रचलित लोककथाके अनुसार श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी उन्होंने यह पद गाया था— अन्यके रूपको न देखनेकी इच्छासे ही उन्होंने अपनी मो मन गिरिधर-छबि पै अटक्यो। आँखें स्वयं फोड़ ली थीं। लिलत त्रिभंग चाल पै चिलकै, चिबुक चारु गढ़ि ठटक्यो॥ ३. परमानन्ददास सजल स्याम घन बरन लीन है, फिरि चित अनत न भटक्यो। इनका जन्म सं० १५५० वि०में कन्नौज (उत्तर कृष्णदास किये प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यो॥ प्रदेश)-के गरीब ब्राह्मण-परिवारमें हुआ। इन्होंने ५. नन्ददास वल्लभाचार्यजीसे अरैल (प्रयाग)-में सं० १५७६ नन्ददास प्रसिद्ध कवि तुलसीदासके चचेरे भाई वि० में दीक्षा ली। ब्रह्मचर्यको आजीवन पालन थे। इनका जन्म सं० १५९०वि० में तथा मृत्यु सं० करते हुए श्रीकृष्णके माधुर्यपक्ष और बाल-लीलाओंका १६३९ वि०में हुई। तुलसीदास और नन्ददास दोनोंने गान किया। वल्लभाचार्यजी भी इनके पदोंके प्रशंसक प्रारम्भमें नृसिंह पण्डितसे शिक्षा ग्रहण की। पंडित थे। इनके कई ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें परमा-नृसिंह रामोपासक थे अतः प्रारम्भमें इनकी रुचि नन्दके पद, परमानन्दसागर महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी मृत्यू रामभक्तिकी ओर थी। किंतु एक दिन द्वारिका जाते सं० १६४१ वि० में मानी जाती है। भाषाई-गठन हुए मार्गमें इनकी मुलाकात विट्ठलनाथजीसे हुई और और काव्यकलाकी दृष्टिसे सूरदास और नन्ददासके वहीं इन्होंने पुष्टिमार्गकी दीक्षा ली। इन्होंने कुल १५ उपरान्त इन्हींका स्थान है। बालहठ सम्बन्धी इनका ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, प्रेम-बारहखड़ी, एक पद है— तनक तनक की दोहनी दै-दै री मैया। श्याम-सगाई, सुदामा-चरित्र, रुक्मिणी-मंगल, भँवरगीत, रासपंचाध्यायी, सिद्धान्तपंचाध्यायी, दशमस्कन्धभाषा, तात दुहन सिखवन कह्यो, मोहि धौरी गैया॥ गोवर्धनलीला, पदावली प्रमुख हैं। इन्होंने अपने हरि विषमासन बैठि के बेद कर थन लीन्हों। शुद्धाद्वैत-सम्बन्धी विचारोंको अनेकार्थमंजरीमें संकलित धार अटपटी देखि कै ब्रजपति हसि दीन्हौं॥ किया है। किंतु लौकिक-पारलौकिक प्रेम एवं भाषा-गृह-गृह से आई जबै, देखन ब्रज-नारी। Hinduism निंदिर्म हिल्मि, क्रिंस प्राप्त संवित्र ngg/dhatmeah MARE WETAH LAWE क्रिंस Avition क्रिंस क्रिंस

सबसे अपवित्र है क्रोध संख्या ४ ] है। रासपंचाध्यायी भागवत-पुराणके २९वें-से ३३वें ७. छीतस्वामी अध्यायोंका सम्मिलित नाम है। जो मूलत: रोला छन्द ये मथुराके ब्राह्मण और राजा बीरबलके पुरोहित में है। रासपंचाध्यायीमें 'मुरली-वर्णन' द्रष्टव्य है— थे। गोस्वामी विद्वलनाथजीकी चमत्कारपूर्ण दिव्य शक्तिसे प्रभावित होकर इन्होंने सं० १५९२ वि०के लगभग लीनी कर-कमल जोग माया सी मुरली। उनसे दीक्षा ली। ये मूलत: अपने पदोंमें भक्तिभावकी चतुर बहुरि अधरासव जुर घटना ही अभिव्यक्ति किया करते थे। इनका यह पद बड़ा धुनि तें अगम निगम प्रगटे बड ही प्रसिद्ध है-की जनिि मोहिनी सब सुख अहो विधना! तो पै अंचरा पसार मांगौ। नवल किसोर कान्ह कल-गान कियो अस। जनम-जनम दीजो मोहि यही ब्रज विसनौ॥ विलोचन बालन को मन होड हरन जस॥ ६. गोविन्दस्वामी ८. चतुर्भुजदास कुम्भनदासजीके सात पुत्रोंमें चतुर्भुजदासजी सबसे इनका जन्म सं० १५६२ वि०में भरतपुर राज्यमें हुआ। कहते हैं तानसेनको पद-गायनकी शिक्षा छोटे थे। परम्परागत खेती-बाड़ीसे अलग संगीत-काव्य गोविन्द-स्वामीने ही दी थी। इनकी कविताएँ मुख्यत: और भजन-कीर्तनकी ओर ही इनकी रुचि थी। इनको राधा कृष्णकी शृंगारिक लीलाओंसे सम्बंधित हैं। कुछ गानविद्या स्वयं इनके पिता कुम्भनदासजीने दी थी। इनके पद बाललीला-विषयक भी हैं। इनके लगभग ६०० पदोंमें शृंगारकी अद्भुत छटा है, जो इनके द्वारा रचित पदोंका संकलन गोविन्दस्वामीके पद शीर्षकसे प्रकाशित ग्रन्थों चतुर्भुज कीर्तन, कीर्तनावली और दानलीलामें संग्रहीत हैं। इनका एक पद द्रष्टव्य है-है। इनके पदोंकी बानगी द्रष्टव्य है— प्रातसमय उठि जसुमति जननी गिरिधरसुतको उबटि न्हवावति। जसोदा! कहा कहीं हीं बात!

#### करि सिंगार, बसन-भूषण सजि, फूलन रचि-रचि पाग बनावति॥ तुम्हरे सुतके करतब मो पै कहत कहे नहिं जात॥ छुटे बंद, बागे अति सोभित, बिच-बिच चोव-अरगजा लावति। भाजन फोरि, ढारि सब गोरस, लै माखन-दिध खात। सूथन लाल फूँदना सोभित, आजुिक छिब कछु कहित न आवित।। जौ बरजौं तौ आँखि दिखावै, रंचहु नाहिं सकात॥ बिबिध कुसुमकी माला उर धरि, श्रीकर मुरली बेंत गहावति। और अटपटी कहाँ लौं बरनौं, छुवत पानि सों गात।

लै दरपन देखें श्रीमुखको, गोबिंद प्रभुचरननि सिर नावति॥

प्रेरक-कथा—

दास चतुर्भुज गिरिधर-गुन हौं कहति-कहति सकुचात॥ ——— सबसे अपवित्र है क्रोध -

कहा जाता है कि भगवान् विश्वनाथकी पुरी काशीकी बात है, गंगा-स्नान करके एक संन्यासी घाटसे ऊपर

जा रहे थे। भीड़ तो काशीमें रहती ही है, बचनेका प्रयत्न करते हुए भी एक चाण्डाल बच नहीं सका, उसका वस्त्र उन संन्यासीजीसे छू गया। अब तो संन्यासीको क्रोध आया। उन्होंने एक छोटा पत्थर उठाकर मारा चाण्डालको और डाँटा—'अन्धा हो गया है, देखकर नहीं चलता; अब मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा।'

चाण्डालने हाथ जोड़कर कहा—'अपराध हो गया, क्षमा करें। रही स्नान करनेकी बात सो आप स्नान करें या न करें, मुझे तो अवश्य स्नान करना पड़ेगा।' संन्यासीने आश्चर्यसे पूछा—'तुझे क्यों स्नान करना पड़ेगा?'

चाण्डाल बोला—'सबसे अपवित्र महाचाण्डाल तो क्रोध है और उसने आपमें प्रवेश करके मुझे छू दिया है। मुझे पवित्र होना है उसके स्पर्शसे।' संन्यासीजीने लज्जासे सिर नीचा कर लिया।

िभाग ९२ गौ-लोकमाता कहानी-( श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') गावो लोकस्य मातरः मानवके प्रयत्न—मानवके अहंकारका मेरुदण्ड उसका सुष्टिके इतिहासमें सजीव संसारपर एक साथ इतने विज्ञान आज भग्नपृष्ठ, असहाय पड़ा है। वैज्ञानिकोंके यन्त्र कुछ नहीं बतलाते कि क्या हो रहा है। वायुमण्डलमें संकट कदाचित् ही आये हों। लगता था प्राणिसृष्टि सर्वथा लुप्त हो जायगी। संकट सदा धर्मकी उपेक्षासे वाष्प बने तो वे वर्षा करा लें; किंतु यहाँ तो समुद्रका आते हैं। किंतु ऐसा संकट जबकि मनु प्रजापित एवं स्तर तीव्रतासे गिरता जा रहा है, सागर सूखते जा रहे जिनपर प्रजाकी परम्परा बनाये रखनेका दायित्व है— हैं और वायुमें वाष्पका पता नहीं है। पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्ति घट गयी है। चुम्बकीय सभी संत्रस्त हो उठे थे। महाशक्ति चामुण्डा संसारको गुठली (नाभिक) किसी कारण क्षीण हो गयी है। चाट लेनेपर तुल गयी थीं। क्या हुआ कि मनुष्य धर्मपराङ्मुख हो गया था। वैज्ञानिकोंने अपने ढंगसे विवेचन किया—'वायुहीन-जलहीन ग्रहोंकी स्थिति पृथ्वी प्राप्त करने जा रही है। कलियुगमें मनुकी संतान प्रायः इन्द्रियलोलुप हो जाती है। तामस मन्वन्तरके इस पंचदश कलियुगमें वह कुछ इस प्रलयसे बचनेका कोई मार्ग नहीं है।' अधिक उच्छृंखल, अपने स्थूल ज्ञानपर अधिक आश्रित, विज्ञानने अपने सब हथियार डाल दिये। हथियार अधिक गर्वोद्धत हो गयी। उसने प्रकृतिके कुछ रहस्य उसे डालने ही थे। कोई एक विपत्ति थी उसके सम्मुख! क्या जान लिये, समझ लिया कि वही सृष्टिका कर्ता-अचानक भूकम्प और ज्वालामुखी फटने प्रारम्भ हो गये धर्ता है। उसने रोगोंको पराजित किया, एक सीमातक थे। भूमण्डलको लगभग सभी मुख्य वेधशालाएँ, यन्त्रागार, अनुसन्धान-केन्द्र उसके पेटमें चले गये। मनुष्यने जहाँ शरीरको अमर कर लिया, कुछ नवीन प्राणी बना लिये और सौरमण्डलके दो-तीन ग्रहोंमें उसके उपनिवेश बन अपने यन्त्र एकत्र करनेका प्रयत्न किया, धराके गर्भसे गये। ईश्वर, धर्मको उसने धता बता दिया। सदाचार वहीं ज्वालामुखी फट पड़ा। मानवके प्रयत्न ध्वस्त उसके शब्दकोषमें दुर्बलताका पर्यायवाची बन गया और करनेपर प्रकृति उतर आयी थी। इस प्रमादमें उसका औद्धत्य बढ़ता गया और लो, अब अमरत्व, रोगजय, नवीन प्राणि-सर्जनका अहंकार महाविद्या चामुण्डा उद्दाम नृत्य करने लगी है। क्षुद्र किसी काम नहीं आया। पता नहीं कहाँसे नवीन-नवीन मानव-मानवका क्षुद्र विज्ञान क्या अब चामुण्डाके रोगाणुओंकी सेना उतरने लगी। तीव्र संक्रामक रोगाणु चरणोंकी गति अवरुद्ध कर लेगा? और वे भयंकरतम विष भी पचा लेते थे। जनपदोंको मानवकी चर्चा व्यर्थ है। प्रजापित पथ नहीं पा रहे उन्होंने ऐसे समेटना प्रारम्भ किया जैसे कृषक नहीं, कृषि हैं। स्वयं सृष्टिकर्ता संत्रस्त हैं। यह शिव-वक्षविहारिणी काटनेवाली मशीन खेतोंको समेटती है। किसीकी स्तुति नहीं सुनती। कोई मर्यादा नहीं मानती। आस्थाहीन, आचारहीन, धर्महीन मानव-अपंग यह सहज प्रचण्डा और इसका खप्पर क्या कभी भरा विज्ञानको लेकर असहाय अब क्या करे? वह तो है कि आज भर जायगा। मृत्युकी अवश प्रतीक्षा करने लगा था। शाश्वत सरिताओंकी धाराएँ शुष्क-प्राय हैं। पृथ्वी सुष्टिकी एक मर्यादा है। हम उसे जानें न जानें, अनुदिन प्राणि-शून्य होती जा रही है और बढ़ता जा रहा है मरुस्थल। तृण, गुल्म, तरुओंसे रहित धरित्री कंकाल मानें न मानें, उलूक-समुदायके जानने-माननेका प्रभाव दीखने लगी है। यह अवर्षण है? ऐसा भी अवर्षण होता दिवसकी सत्तापर पड़ा नहीं करता। सृष्टिकी संचालक, है, जिसका आदि-अन्त ही न जान पड़े? नियामक, संरक्षक कुछ शक्तियाँ हैं। कलापग्रामके

संख्या ४] गौ—लं	ोकमाता ४१
**************************************	*********************************
कल्पान्त तापस, मनु, प्रजापति, पितृगण एवं देवता।	नगाधिराजके शिखरोंमें गूँजने लगा। स्तवनके स्वर उच्च
अकाल-प्रलय हो जाय तो उनकी सत्ता बनी रहेगी?	होते गये और उनमें भाव-विह्नलता आयी। सहज शुद्ध
उनका दायित्वके प्रति प्रमाद वह क्षमा कर देगा, जो	अन्त:करण ऋषियोंके कण्ठसे गूँजती वह परा वाणी,
सबका परम नियन्ता है ?	गगन परिपूत हो गया उस नादसे।
प्रजापति, पितृगण, देवता क्या करें? चामुण्डाके	शत-शत चन्द्रज्योत्स्ना-विनिन्दक ज्योति—ऋषियोंके
सम्मुख उनका वश कहाँ चलता है। मनु और जन, तप,	नेत्र एक बार ऊपर उठे और एक साथ उन्होंने भूमिपर
महर्लोकोंके तापस, ऋषि, मुनि उतर आये धरापर। उनके	मस्तक धर दिये।
लोक कर्मलोक नहीं हैं। अपने लोकोंमें वे कुछ करते—	'हुं' एक गम्भीर ध्विन गूँजी। अनन्त वात्सल्य,
कोई परिणाम नहीं था। कलापग्रामके कल्पान्तजीवियोंको	अपार कारुण्य, अतुलनीय आशीर्वाद–धारा; जैसे धरित्रीको
उन्होंने प्रत्यक्ष सहयोग दिया।	धो गयी। उन करुणावरुणालयाको स्तुतिकी अपेक्षा कहाँ
यज्ञ—लेकिन यज्ञसे तुष्ट होकर देवेन्द्र वर्षा तो तब	और आशीर्वाद तो उनकी सहज हुंकृति है।
करें, जब उन्हें ऐसा करने दिया जाय। यज्ञ होते हैं—	× × ×
सविधि, सम्यक् पूर्ण यज्ञ हिमगिरिकी अधित्यकामें वे	'चामुण्डे!' इस प्रकार कोई उन महाशक्तिको
विशुद्धसत्त्व ऋषि करते हैं। मेघमाला उठती है और	पुकारेगा, सुर भी इसकी कल्पना नहीं कर सकते; किंतु
फुहारें छूटती हैं—श्रुतिकी मर्यादाके रक्षामात्रके लिये	सहज झिड़कीसे भरा था वह स्वर—'बहुत हो गया!
फुहारेंमात्र। चामुण्डाकी हुंकारके सम्मुख सांवर्तक मेघ	शान्त हो अब।'
ही नहीं ठहर पाते तो सामान्य कादम्बिनी कैसे ठहरेगी?	'तू जा! चामुण्डा गो-बलि नहीं लेती।' अट्टहास
'हम अवश हैं!' इन्द्र साक्षात् प्रकट हुए ऋषियोंके	करती वह कराली क्रोधसे चिल्लायी।—'मेरे खप्परका
सम्मुख। वे जानते हैं कि इन तापसोंका अनुष्ठान अमोघ	व्याघात मत बन!'
रखनेका दायित्व उनपर है और इनका कोप—दीनवदन	'मेरी संतानोंको अभय दे!' गम्भीर बना रहा
देवेन्द्रने अपनी असमर्थता प्रकट की। कोई ऋषि अवशपर	स्वर—'तू लोकमाता है। शान्त हो जा।'
क्रोध करके शाप कैसे दे सकता था?	'नहीं!' ब्रह्माण्ड फट जाय ऐसा गर्जन।
'महाविद्या महाशक्ति चामुण्डाके रोषका उपशम?'	'नहीं!' कामधेनुके कर्ण खड़े हुए। नेत्रोंमें अरुणिमा
'वह उपशान्त होनेको प्रस्तुत नहीं है।'	आयी। सिर झुका लिया उन्होंने और हुंकार किया। वह
'उसे शान्त तो होना चाहिये।'	हुंकृति—उन नथुनोंसे महाज्वाला लपकी और भागी
'उसे किसीका शाप स्पर्श नहीं करता।'	चामुण्डा। उसके कपालकी महाग्नि पीली पड़ चुकी थी।
ऋषि-मुनियों एवं तापसोंकी सम्पूर्ण मण्डली कोई	जो निखिल ब्रह्माण्डमयी हैं, उनको दौड़नेकी
मार्ग नहीं पा रही थी और उनमें प्रत्येकको ज्ञात है कि	अपेक्षा कहाँ थी। दौड़ रही थी चामुण्डा—बिखरे केश,
जब प्राणीको कोई पथ प्राप्त न हो, उसे क्या करना	अस्त-व्यस्त चामुण्डा भाग रही थी। उसका खड्ग,
चाहिये। उनके नेत्र बन्द हुए और परमप्रभुको उन्होंने	उसका कर-कपाल, सब मलिन-कान्ति और वह
साथ ही पुकारा—शब्दोंमे नहीं, अन्तरकी वाणीमें, जिसे	महाप्रलयकी अधिदेवी, त्रिलोकीको आर्त करनेवाली
वह अन्तरका वासी ठीक समझता है।	स्वयं आर्त भाग रही थी। उसे भागनेको भी स्थान नहीं
'हम लोकमाताका आवाहन करेंगे!' कोई उस	मिल रहा था।
अनन्त करुणार्णवको पुकारे और पथ न पाये ? पथ प्राप्त	स्रष्टाकी उपेक्षा कर चुकी वह और वे लोकपितामह
हो गया था। एक साथ ऋषियोंके स्वरमें सुरभी-स्तवन	चाहें तो भी उसकी सहायता नहीं कर सकते, यह

चामुण्डा जानती है, किंतु यह आज क्या हो रहा है? अशुभ पुत्री!' चामुण्डाने स्वीकार किया—'सकारण उसे आज कैलासमें भी क्या प्रवेश नहीं प्राप्त होगा? क्रोध भी चामुण्डाका शान्त हो जायगा यदि आपकी इतना उग्र, इतना प्रचण्ड तो उसने भगवान् शिवके कोई संतान—कोई गौका आश्रय ले लेगा। गो-पूजा से वृषभको कभी नहीं देखा। यह नित्य शान्त धर्म, किंतु चामुण्डा दूर रहेगी।' आज तो वह हुंकारमें ज्वालमाला उगल रहा है।

आघातोद्यत वृषभ—चामुण्डा आज उसके लिये अपरिचिता हो गयी है और वृषभका प्रतिकार करनेमें भी अपनेको

समर्थ नहीं पाती। 'देवर्षि!' अचानक नारदजी दीख गये तो प्राणोंको

आश्वासन प्राप्त हुआ।

'देवि! उन वात्सल्यमयीमें रोष कभी आता नहीं। माता कभी रुष्ट नहीं होतीं।' देवर्षिने कहा—' सर्वेश्वरेश्वर

मयुरमुकटी जिनकी पद-वन्दना करते हैं, उन गोलोक-महेश्वरीका प्रतिकार कहीं नहीं है।' 'मात:!'चामुण्डाको मार्ग मिल गया और लोकमाताको

पुकारने कहीं जानेकी आवश्यकता तो नहीं होती। 'चामुण्डे!' स्वरमें अपार वात्सल्य गूँजा—'प्रलयके

अतिरिक्त तू उद्धत नहीं बनेगी। आवश्यक होनेपर भी

तेरा आघात सीमित एवं मर्यादित रहेगा।' 'आपके आदेशकी मर्यादा मानेगी आपकी यह

——— ऋण लेकर भूलना नहीं चाहिये प्रेरक-प्रसंग— नेपोलियन बोनापार्ट बचपनमें बहुत निर्धन थे; किंतु अपने साहस और उद्योगसे वे फ्रांसके सम्राट् हुए।

कुछ स्मरण आया और अकेले ही एक छोटे घरके आगे वे जा खड़े हुए। उस घरकी एक बुढ़ियाको उन्होंने बुलाकर कहा—'बूढ़ी माँ! बहुत पहले इस स्कूलमें एक बोनापार्ट नामका लड़का पढ़ता था, तुम्हें उसका कुछ

स्मरण है ?' बुढ़िया बोली—'हाँ, हाँ, मुझे स्मरण है। बड़ा अच्छा लड़का था वह।' नेपोलियन—'वह तुमसे फल, मेवा, रोटी आदि खाने-पीनेकी चीजें लिया करता था। उसने तुम्हारा

सब दाम दे दिया या कुछ उधार उसपर रह गया?'

तो अपने पाससे उनके पैसे भी चुका देता था।'

स्वतः आकर्षण शक्ति-सम्पन्न हो गयी है।' काश, मानवमें सद्बुद्धि आती! वह गो-सेवा सीख लेता! उधर कैलासमें प्रश्न करनेपर भगवान् शशांकशेखर

धराके उपद्रव सहसा शान्त हो गये। पृथ्वी शस्यश्यामला

हो गयी। वैज्ञानिकोंने कहा—' पृथ्वीकी गुठली (नाभिक)

िभाग ९२

देवी उमासे कह रहे थे—'देवि! तुम महाविद्यारूपमें दशधा हो। लोकमाता हो; किंतु तुम जानती ही हो कि सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी आह्लादिनी शक्तिका ही

अंश तुममें है। गोलोकेश्वरी कामधेनु ही सच्चे अर्थमें लोकमाता हैं। वे उन परम पुरुषकी मूर्त संगिनी शक्ति

हैं। यह निखिल लोक—समस्त लोकोंमें जो स्थूल-सूक्ष्म अभिव्यक्ति है, सब उन कामधेनुकी ही संकल्पाभिव्यक्ति

है। वे किसीको भी अपनेमें लय कर लेनेमें सहज समर्थ हैं। उनकी—उनकी मूर्तिभूता गौओंकी सेवा ही लोकालयमें

श्रेयस्करी है।'

सम्राट् होनेके पश्चात् वे एक दिन घूमते हुए उस ओर पहुँचे, जहाँ बचपनमें उन्होंने शिक्षा पायी थी। सहसा उन्हें

बुढ़िया—'वह उधार रखनेवाला लड़का नहीं था। वह तो अपने साथियोंमें किसीके पास पैसा न हो

नेपोलियन—'तुम बहुत बूढ़ी हो गयी हो, इससे सब बातें तुम्हें स्मरण नहीं। अपने पैसे देकर तुम भूल जाओ, यह तो ठीक है; किंतु ऋण लेकर भूलना तो ठीक नहीं। उस लड़केपर तुम्हारे कुछ पैसे अभीतक उधार हैं। वह

ਅਮਾਜ ਰੇਪਾਤਾਜ਼ ਭਾਰਤਾ ਤੇ ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਜ਼ਿਲ੍ਹ ਐਲੀ ਤਦੇ। ਕੁੜੀ ਰਾਜ਼ ਜ਼ਿਲ੍ਹ ਐਲੀ ਜ਼ਿਲ੍ਹ

संख्या ४ ] साधनोपयोगी पत्र साधनोपयोगी पत्र (१) यथार्थतया पूर्ण सफलता नहीं होती। सिद्धिका दूसरा नाम पाप-पुण्यकी परिभाषा ही मन:शुद्धि है। मन तभी शुद्ध रहता है, जब आहार प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपके प्रश्नोंका शुद्ध हो—**'आहारशृद्धौ सत्त्वशृद्धिः।'** आहार वही उत्तर निम्नलिखित है— शुद्ध है, जो शुद्ध न्यायपूर्ण जीविकाद्वारा उत्पादित (१) पाप और पुण्य कौन हैं ? इनको गिनकर नहीं अन्नसे बना हो, सात्त्विक हो, भोजननिर्माणमें भी बाह्य बताया जा सकता। हिन्दू-धर्मशास्त्रोंमें—वेद आदिमें जो शुद्धि और आन्तरिक शुद्धिके नियमोंका यथावत् पालन कर्म करनेयोग्य बताया गया है, वह पुण्य है तथा जिसको किया गया हो। आजकल चौका-चूल्हाको ढकोसला निषेध कहा गया है, वह पाप है। कभी-कभी मानसिक बताया जाता है; परंतु कितने ही अदृश्य भूतादि प्राणी, भावके भेदसे पुण्यकी क्रिया भी पाप बन जाती है। जैसे जो आतिवाहिक देहोंमें या वायुप्रधान प्रेतशरीरमें रहते हैं, जप-तप बड़े पुण्यका कर्म है; परंतु वह किसीका प्राण भूखके कारण प्रत्येक अन्नपर दृष्टि रखते हैं। अपवित्र लेनेके उद्देश्यसे किया जाय अथवा अपनेको पुण्यात्मा स्थानोंमें उनका बल स्वभावत: बढ़ता है। अत: वे बताकर किसीको ठगनेके लिये किया जाय तो देखनेमें अपवित्र स्थानमें अपवित्रतापूर्वक तैयार किये हुए अपवित्र अन्नको अपनी दृष्टि और स्पर्शसे भी दृषित कर देते हैं। ऊपरसे पुण्यकर्म होनेपर भी वह वास्तवमें पाप हो जाता है। इसी प्रकार झूठ बोलना वस्तुत: पाप है, परंतु किसी ऐसे अन्नके भोजनसे आध्यात्मिक पवित्रता तो नष्ट होती निर्दोषकी प्राणरक्षाके लिये झूठ बोलनेकी आवश्यकता ही है, अनेक प्रकारके रोगोंका भी आक्रमण होता है। हो तो वहाँ झुठ भी पुण्य बन जाता है। व्यासजीने सम्पूर्ण जहाँ रसोईघर साफ-स्वच्छ, धुला या लिपा-पुता हो, शास्त्रोंका आलोचन करके एक-एक वाक्यमें पाप और बनानेवाला शुद्ध, सदाचारी, प्रेमी हृदय एवं बाह्य शुद्धिसे भी सम्पन्न हो, अन्न भी न्यायत: उपार्जित हो, वहाँ इन पुण्यकी परिभाषा बतलायी है— परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥ अदुश्य भूतादिका प्रवेश नहीं होता। जहाँ भगवन्नामका 'दूसरोंका भला करना पुण्यका काम है और कीर्तन होता है, स्वाहा-स्वधाके स्वर गूँजते हैं, वहाँसे दुसरोंको कष्ट पहुँचाना पापका कार्य है।' भूत-प्रेतादि भाग जाते हैं। ऐसे घरोंका अन्न स्वभावत: या यों कहिये कि जिस कर्मसे अपना और पवित्र होता है। भगवान्को भोग लगाया गया हो, बलिवैश्वदेवकर्म करके देवता और अतिथिका प्राप्य भाग दूसरोंका परिणाममें अहित होता हो, वह पाप है; और जिससे परिणाममें दोनोंका हित होता हो, वह पुण्य है। निकाल दिया गया हो, वह अन्न यज्ञावशिष्ट है; उसे यही पाप-पुण्यकी परखका सारभूत सिद्धान्त है। अमृतके समान हितकर बतलाया गया है। उसके भोजनसे आयु और आरोग्यकी वृद्धि होती है। बड़ी जातिका आदमी इसे सदा स्मरण रखना चाहिये। (२) भोजनके सम्बन्धमें हिन्दू-धर्मशास्त्रोंने बहुत छोटी जातिके हाथका अन्न खा ले तो क्या लाभ-हानि सावधान रहनेकी राय दी है। हमारे भोजन और पानसे है ? यह आपका प्रश्न है। जातियाँ सभी अपने-अपने ही मन-प्राणकी पुष्टि होती है। कहावत है, 'जैसा अन्न स्थानपर बड़ी हैं। छोटाई-बड़ाई केवल अवस्थाको लेकर है। ब्राह्मण पहले पैदा हुए तो वे 'अग्रज' कहलाते वैसा मन।' हमारे खाये हुए अन्नका जो सारतम अंश हैं। जो सबसे अन्तमें उत्पन्न हुए थे, वे 'अन्त्यज' है, उसीसे मन बनता है। मन ही समस्त इन्द्रियोंका प्रेरक कहलाये। चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने स्थानपर है; अत: मन ठीक न रहे तो हमारे शरीर और इन्द्रियोंके उतना ही महत्त्व रखते हैं। उनके कर्म अलग-अलग हैं। द्वारा कोई उत्तम कार्य हो ही नहीं सकता। परमार्थ-उन कर्मोंको असंख्य पीढियोंसे करते रहनेके कारण साधनमें मनकी शुद्धिपर बहुत अधिक जोर दिया गया है। अशुद्ध मनसे ज्ञान या भक्ति—किसी भी साधनमें उनकी रग-रगमें वैसे ही संस्कार व्याप्त रहते हैं। अत:

रहन-सहन और खान-पानमें भी उसका प्रभाव पडे बिना तो इसके लिये घबरानेकी आवश्यकता नहीं है। नहीं रह सकता। ऐसी दशामें उचित यही है कि सभी देवी दुर्गा सम्पूर्ण जगत्की माता हैं, आपकी भी वर्ण या वर्गके लोग अपने समान वर्ण एवं खान-माँ हैं: माताका प्यार अपनी संतानोंपर स्वाभाविक ही होता पानवाले लोगोंके साथ ही खान-पान आदिका सम्बन्ध है। आपपर भी उनका प्यार है, कृपा है। दर्शन देना स्थापित करें। समान वर्णवालोंमें भी जो संक्रामक रोगोंके उन्होंके हाथकी बात है। वे सबकी अधीश्वरी और पूर्ण शिकार हों, उनके साथ सबका बैठना उत्तम नहीं है। इस स्वतन्त्र हैं। किसी भी साधनमें या मन्त्र-यन्त्रमें ऐसी शक्ति प्रकार विचारपूर्वक भोजन आदिमें सावधानी बरतनेसे नहीं है, जो उन्हें अपने प्रभावसे दर्शन देने अथवा अन्य सबके तन-मन स्वस्थ रह सकते हैं। शेष प्रभुकृपा। कोई कार्य करनेके लिये बाध्य कर सके। माता दुर्गा स्वयं

### पापसे घृणा कीजिये सप्रेम हरिस्मरण। आपने मालिकको मालम हो

जानेके कारण दुराचार छोड़ दिया, यह कोई बहुत

आशाकी बात नहीं है। आपके मनमें वेश्या-संगके प्रति

घृणा होनी चाहिये। वेश्यागामी लोग स्वयं तो पतित होते ही हैं, वे समाजकी भोली-भाली सतायी हुई-विपद्में पड़ी हुई अबलाओंको पापके कीचड़में फँसानेके कारण बनकर महापाप करते हैं। आप उस सर्वान्तर्यामी मालिकसे डरिये, जिससे आपकी एक भी बात छिपी

नहीं रह सकती। आपके दो साथी जो अभी इस पापमें पडे हैं, उन्हें बचानेका प्रयत्न कीजिये। उन्हें सच्चे मनसे समझाइये; परंतु यह नहीं होना चाहिये कि आप भी पुन: उसी मार्गमें प्रविष्ट हो जायँ। जबतक आपके मनमें

वस्तुत: इस कृत्यसे घृणा नहीं होगी और जबतक मालिकोंके मालिक भगवान्का आपको डर नहीं होगा, तबतक ऐसी शंका हो ही सकती है। आप भगवान्से

प्रार्थना कीजिये कि वे आपको तथा आपके मित्रोंको बल दें, सदुबृद्धि दें और इस पापके भयानक पंकसे निकाल दें। साथ ही दृढ़ प्रतिज्ञा कीजिये कि भविष्यमें चाहे कुछ भी हो जाय, यह पाप कभी नहीं करेंगे। शेष भगवत्कृपा।

(3) दुर्गामाताकी कृपा

सम्भव साधन भी करती हैं। अबतक दर्शन नहीं हुआ,

प्रिय बहन! सादर हरिस्मरण। पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप भगवतीजीका प्रत्यक्ष

दर्शन करनेके लिये उत्सुक हैं और इसके लिये यथा

रहना कठिन हो जाय, तबतक ही वे दर्शन देनेमें विलम्ब करती हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि दर्शन होनेमें हमारी अपनी लालसाकी कमी ही कारण है। हमें अपनेको

दर्शनके योग्य बनाना चाहिये। अधिकारी होनेपर माता

ही कुपा करके दर्शन देती हैं। आप दर्शनकी चिन्ता

छोडकर उनको अन्तर्भावसे पुकारें, उनका नाम जपें।

सोते-जागते, चलते-फिरते हर समय उनका ही स्मरण

करें। अपने-आपको उनकी शरणमें डाल दें, जो कुछ

करें उन्हींकी प्रसन्नताके लिये करें। तन, मन, प्राण सब

भगवतीकी सेवामें लगा दें। सबमें भगवती दुर्गा विराजमान

हैं, ऐसा समझकर किसी भी व्यक्तिपर क्रोध न करें।

सबको सुख पहुँचानेकी चेष्टा करें। माता दुर्गामें इतना

प्रेम बढा लें कि उनके दर्शन बिना एक क्षण भी रहना

असम्भव हो जाय। ऐसी अवस्था आनेपर दयामयी माता

स्वयं ही आपसे मिलनेको आकुल हो उठेंगी। वे दौडी आयेंगी और आपको छातीसे लगाकर निहाल कर देंगी।

चल सकता है, इस मेरी पुत्रीको माताके दर्शनकी इतनी

तीव्र उत्कण्ठा नहीं है, जिससे इसका क्षणभर भी स्वस्थ

वे जबतक समझती हैं कि दर्शन दिये बिना काम

स्वयं ही दर्शन देंगी। माताका नाम जपना, निरन्तर उनका स्मरण-ध्यान करना, उनमें प्रेम बढाना और आर्तभावसे

'माँ ! माँ!' कहकर उन्हें पुकारना—यही उनको पानेका अमोघ साधन है। यही आपके लिये सुगम भी पडेगा।

भाग ९२

मन्त्र-यन्त्रोंकी विधिका पूरा-पूरा पालन आपसे असम्भव है। संस्कृत नहीं जाननेसे भी पूर्वोक्त साधन चल सकता है। आशा है, आप इसपर मनन करेंगी। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

## व्रतोत्सव-पर्व

१ मई

२

3

४ ,,

ξ ,,

9 ,,

ረ

9

,,

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, शुद्ध ज्येष्ठ कृष्णपक्ष

तिथि नक्षत्र दिनांक

प्रतिपदाप्रात:५।५२ बजेतक मंगल विशाखा दिनमें ३।२१ बजेतक अनुराधा सायं ४।५८ बजेतक बुध

संख्या ४ ]

द्वितीया 🦶 ६।४३ बजेतक ज्येष्ठा रात्रिमें ७। २ बजेतक तृतीयादिनमें ७।५८ बजेतक ग्रु

चतुर्थी 🕖 ९। ३९ बजेतक शुक्र | मूल ,, ९। २४ बजेतक

पंचमी 🕖 ११।३५ बजेतक शनि पु०षा० ,, १२।० बजेतक

षष्ठी 🕠 १। ३९ बजेतक रवि उ०षा० ,, २। ३७ बजेतक श्रवण रात्रिशेष ५।६ बजेतक सप्तमी 🔑 ३।४० बजेतक सोम

मंगल धनिष्ठा अहोरात्र बुध धनिष्ठा दिनमें ७। १८ बजेतक

अष्टमी सायं ५ । २६ बजेतक नवमी 🕖 ६।५३ बजेतक दशमी रात्रिमें ७।५२ बजेतक शतभिषा ,, ९।७ बजेतक गुरु

एकादशी " ८।२३ बजेतक शुक्र पु०भा० 🕖 १० । २९ बजेतक

द्वादशी 🗤 ८ । २३ बजेतक शनि उ०भा० 🔑 ११ । २१ बजेतक त्रयोदशी 🗤 ७ । ५१ बजेतक रवि रेवती ,, ११।४१ बजेतक

चतुर्दशी सायं ६।५० बजेतक सोम अश्वनी ,, ११।३५ बजेतक मंगल भरणी ,, ११।० बजेतक

अमावस्या प्रातः ५। २४ बजेतक

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, अधिक ज्येष्ठ शुक्लपक्ष

तिथि वार नक्षत्र

दिनांक कृत्तिका दिनमें १०।७ बजेतक बुध

प्रतिपदा दिनमें ३।३९ बजेतक रोहिणी 11 ८। ५३ बजेतक गुरु

द्वितीया '' १ । ३५ बजेतक मृगशिरा 🗤 ७ । २७ बजेतक शुक्र शनि आर्द्रा प्रात: ५।५१ बजेतक

पुष्य रात्रिमें २।३१ बजेतक रवि

आश्लेषा 🗤 १२ । ५९ बजेतक सोम

मंगल मघा 🗤 ११। ३५ बजेतक

अष्टमी 🗥 ११। ३० बजेतक

नवमी '' ९। ३५ बजेतक बुध पू०फा० 🕠 १०। २९ बजेतक

गुरु

शुक्र

रवि

सोम

मंगल

दशमी '' ८। १ बजेतक

एकादशी सायं ६ ।५१ बजेतक

द्वादशी <table-cell-rows> ६।६ बजेतक

त्रयोदशी ग५। ५० बजेतक

चतुर्दशी " ६ ।५ बजेतक

पूर्णिमा ६।५३ बजेतक

पंचमी प्रात: ६। २६ बजेतक सप्तमी रात्रिमें १।३९ बजेतक

तृतीया 🗤 ११। १९ बजेतक चतुर्थी 😗 ८। ५४ बजेतक

उ०फा 🗤 ९। ४३ बजेतक

हस्त 🗤 ९। १७ बजेतक

स्वाती 11 ९। ५२ बजेतक

विशाखा '' १०। ५६ बजेतक

अनुराधा 11 १२। २८ बजेतक

शिनि चित्रा 🗤 ९। २१ बजेतक

28 "

११ " १२ " १३ "

१५ ,,

१६ मई

१७ "

१८ "

१९ "

२० "

२१ "

२२ "

23 "

28 "

२५ "

२६ "

२७ "

२८ "

29 "

20 11 मुल दिनमें ११।२१ बजेसे।

कृत्तिकाका सुर्य रात्रिमें ९।१७ बजे।

दिनमें ११। ४१ बजे, प्रदोषव्रत।

मिथुनराशि रात्रिमें ८।१० बजेसे।

मिथुनराशिका सूर्य दिनमें ११।२ बजे।

(सबका), **रोहिणीका सूर्य** सायं ६।४१ बजे।

तुलाराशि दिनमें ९।१९ बजेसे, शनिप्रदोषव्रत।

भद्रा सायं ६।५ बजेसे, वृश्चिकराशि सायं ४।४० बजेसे।

भद्रा प्रातः ६। २९ बजेतक, पूर्णिमा, मूल रात्रिमें १२। २८ बजेसे।

कन्याराशि रात्रिशेष ४। १७ बजेसे।

मुल रात्रिमें २।३१ बजेसे।

श्रीगंगादशहरा।

भद्रा प्रातः ७।२२ बजेसे रात्रिमें ७।५२ बजेतक।

वृश्चिकराशि दिनमें ९।३ बजेसे।

मूल रात्रिमें ९। २४ बजेतक।

भद्रा दिनमें १।३९ बजेसे रात्रिमें २।३९ बजेतक, मकरराशि प्रात: ६।३८ बजेसे।

बजे, ग्रीष्मऋतु प्रारम्भ, वृषराषि सायं ४।५७ बजेसे।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा रात्रिमें १०।७ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।

भद्रा दिनमें ८।५४ बजेतक, कर्कराशि रात्रिमें १०।३५ बजेसे।

भद्रा दिनमें १२। ३५ बजेतक, मूल रात्रिमें ११। ३५ बजेतक।

**भद्रा** रात्रिमें १। ३९ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिमें १२। ५९ बजेसे, **सायन** 

भद्रा दिनमें ७। २६ बजेसे सायं ६। ५१ बजेतक, पुरुषोत्तमी एकादशीव्रत

भद्रा रात्रिमें ७। २१ बजेसे, मूल सायं ४।५८ बजेसे।

श्रीगणेशचतुर्थीवृत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।३० बजे।

मुल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें ७। ५८ बजेतक, धनुराशि रात्रिमें ७। २ बजेसे, संकष्टी

कुम्भराशि सायं ६।१२ बजेसे, पंचकारम्भ सायं ६।१२ बजे।

मीनराशि रात्रिशेष ४। ४८ बजेसे, अचला एकादशीव्रत (सबका)

भद्रा रात्रि ७।५१ बजेसे, **मेषराशि** दिनमें ११।४१ बजेसे, **पंचक समाप्त** भद्रा दिनमें ७। २१ बजेतक, मूल दिनमें ११। ३५ बजेतक। भैमावती अमावस्या, वटसावित्री व्रत, वृष-संक्रान्ति दिनमें ८। २५ कृपानुभूति

# भगवान् रामकी प्रत्यक्ष कृपा

#### चाहिये, किंतु कोषाध्यक्षजीने कहा बजट नहीं है।' उन्होंने सत्य घटना आषाढ़ शुक्ल द्वितीया सन् २००८ ई० की

है। पुरीकी ही भाँति भगवान् जगन्नाथ स्वामीकी रथयात्रा प्रतिवर्ष 'रीवा' में भी धूमधामसे निकाली जाती है। कहते हैं कि बांधवगढ़नरेश महाराज विश्वनाथसिंह जू देव जगन्नाथ पुरीसे ही भगवान् जगन्नाथके विग्रहोंको स्वयं लेकर आये थे

कहा—साढे चार हजार रुपये लगेंगे, उन महाशयजीने तत्काल

और उन्हें चारों धामके मन्दिर लक्ष्मणबागमें स्थापित किया था। सुन्दर सुसज्जित काष्ठ रथका निर्माण महाराज रीवाने रथयात्राहेतु ही करवाया था। प्रतिवर्ष आषाढ् शुक्ल द्वितीयाको

लक्ष्मणबाग, किला तथा शहरके प्रधान मार्गीसे रथयात्रा सोत्साह निकलती है और भगवान् अपने भक्तोंको दर्शन देते हुए एक रात्रि मार्तण्ड स्कूलमें विश्रामकर आषाढ़ शुक्ल तृतीयाको पुन: अपने मन्दिर लक्ष्मण बागमें विराजमान होते हैं। 'मानस भवन' का भवन बननेके बाद जिला प्रशासन एवं सामाजिक कार्यकर्ताओंके सुझावपर मार्तण्ड स्कूलके स्थानपर 'मानस

भवन' में ही भगवान् जगन्नाथजीका विश्राम होने लगा, इससे लोगोंको दर्शनका लाभ सुगमतासे होने लगा; क्योंकि यह स्थान नगरके मध्यमें है। सन् २००८ में मानस मण्डल रीवाकी पदाधिकारीके नाते भगवान्की अगवानी तथा विशेष पूजा-अर्चनाका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। दूसरे दिन भव्य भण्डारेका आयोजन रखा

गया। जिसकी तैयारी एक दिन पूर्व ही होनी थी। अनाज, किराना, सब्जी, घी, मसालेका इन्तजाम हो गया। कढ़ी, चावल, सब्जी, पूड़ी तथा बूँदी बनवानेका निर्णय हुआ। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि भगवान्को 'मालपुआ' का भोग भी लगाया जाय। हलवाईसे पूछा तो उसने बताया कि मालपुआ

बनानेमें साढ़े चार हजार रुपये अतिरिक्त खर्च होंगे। कोषाध्यक्षजीसे बात की तो उन्होंने कहा कि बूँदी बनवा रहे हैं, मालपुआमें खर्च अधिक होगा, अत: उसको स्थगित रहने दीजिये-मेरा मन दुखी हो गया। रात्रिके साढ़े दस बज चुके थे। रसोई और हलवाईका सभी प्रबन्धकर मैं अपने पतिदेवके

कहा—'भगवान् जगन्नाथजीको मालपुआका भोग तो लगना ही चाहिये। कितना खर्च होगा मालपुआ बननेमें?' मैंने

जेबसे साढ़े चार हजार रुपये निकाले और कहा—लीजिये, साढे चार हजार रुपये गिन लीजिये और प्रेमसे मालपुआ बनने दीजिये। ऐसा लगा, जैसे गिनी हुई रकम वे लेकर आये

थे। मैं आश्चर्यमें पड गयी। भण्डारेके नामसे सौ रुपये देने में भी लोगोंको तकलीफ होती है, वहीं ये महाशय इतनी बडी रकम एकाएक कैसे दे रहे हैं? मैं सैंतालीस वर्षोंसे रीवामें विभिन्न महाविद्यालयोंमें अध्यापन कर चुकी हूँ, रीवाके

सभी लोग मुझे जानते हैं तथा मैं भी प्राय: सभीको जानती हैं किंतु इन महाशयको पहले कभी देखा भी नहीं था। इसलिए मैंने पूछा—भैया! आपको रीवामें मैंने पहले कभी नहीं देखा। आप कभी मानस भवनके किसी कार्यक्रममें भी नहीं दिखे! मैंने आपको पहचाना नहीं। उन्होंने कहा—मैं दशरथका बेटा

अवाक् भौचक्की होकर उनको देखती रही, बातें सुनती रही, दानकी रकम भी स्वीकार कर ली, किंतु कुछ समझ न सकी। 'अतिसय प्रबल देव तव माया'—इसी मायाके चक्करमें भूल गयी कि दशरथके पुत्र वे रामजी ही तो थे,

प्रगट हुए थे और चले गये, फिर कभी नहीं दिखे। दूसरे दिन प्रेमसे मालपुआ बना, भगवान् जगन्नाथजीको भोग लगाया गया, सब भक्तोंने पाया। शाम चार बजे

भगवान् जगन्नाथजी मानस भवनसे बिदा हो गये, तब मैंने दशरथके पुत्रके रूपमें आये हुए उन अनजान व्यक्तिका चिन्तन किया और घोर पश्चात्ताप करने लगी कि मैंने उन्हें पहचाना क्यों नहीं? जी भरकर देखा भी नहीं। मुझ-जैसे

हूँ, शहडोलसे आया हूँ और अब वापस जा रहा हूँ, ऐसा

कहकर वे उदार महापुरुष तत्काल वहाँसे चले गये। मैं

जो मेरी मालपुआ भोग लगानेकी प्रबल इच्छाको पूर्ण करने

तुच्छपर रामजीकी कैसी अहैतुकी कृपा हुई? 'अस प्रभृ छाँड़ि भजिह जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥' मैंमे।तिख्यांsमेरी ठाइट०ित्ये डाइत्थ्ये फिल्इग्लियंडर.कुपुर्यharma | MADE WITH दर्शेष्ट्रपिक्षे व्यक्तिरीडरा.कुपुर्यी

साथ अपने निवासको लौटने ही वाली थी कि अचानक एक अनजान महाशय आये और पूछा—'कलके भण्डारेकी व्यवस्था

हो गयी ?' मैंने कहा—हाँ, हो गयी। वे बोले और 'मालपुआ'—

पढो, समझो और करो संख्या ४ ] पढ़ो, समझो और करो हो चुकी है। अब मेरी जगह किसी अन्य व्यक्तिको (१) अनुठी नैतिकता दीवानके पदपर नियुक्त कर दें।' महाराज उन-जैसे आधुनिक भारतके निर्माताओं मेंसे एक डॉ॰ एम॰ कर्तव्यपरायण और अनुभवी व्यक्तिको दस वर्ष और दीवान बनाये रखना चाहते थे, परंतु विश्वेश्वैरया नयी विश्वेश्वरैयाकी गणना भारतके महान् इंजीनियरोंमें की जाती है। कृष्णराजसागर बाँध, हीराकुण्ड बाँध, भद्रावती पीढ़ीको देशका कर्णधार मानते थे और उसे आगे बढ़ने स्टील वर्क्स, हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लि॰ बंगलौर देना चाहते थे। उनके तकनीकी ज्ञानके चमत्कारके नमूने हैं। इतना ही वे एक दिन कारसे महाराजाके महलमें पहुँचे। कार वहाँ खड़ी की। बन्द लिफाफेमें त्यागपत्र रखा और नहीं, उन्होंने हैदराबाद शहरको बाढमुक्त करनेकी योजना बनाकर उसे बाढ़की समस्यासे मुक्त कराया। मैसूर बैंक उसे महाराजके पास भिजवा दिया। और मैसूर विश्वविद्यालयकी स्थापना भी उन्हींके अथक महाराजने जैसे ही त्यागपत्र देखा, हतप्रभ रह गये। मैसूर-जैसे राज्यका दीवान होना, आज किसी राज्यके परिश्रमके परिणाम हैं। अपने एक सौ एक वर्षीय जीवनमें वे अन्ततक सिक्रय रहे। त्याग, परिश्रम, मुख्यमन्त्री-जैसा है, परंतु अपनी नियमनिष्ठाके कारण कर्तव्यनिष्ठा एवं देशप्रेमके वे मूर्तिमान स्वरूप थे। वे सेवानिवृत्तिकी आयुपर उन्होंने स्वतः पद छोड़ दिया; चरित्र-पालन और ईमानदारीको मानवका सर्वोत्तम गुण यद्यपि वे बादमें भी देशकी सेवाके भावसे अपने कार्यमें बताया करते थे और स्वयं पग-पगपर नैतिकताके जुड़े रहे, पर पदके प्रति लिप्सा नहीं रखी। आगे चलकर नियमोंका पालन करते थे। स्वाधीन भारतमें डॉ० विश्वेश्वरैयाको 'भारत-रत्न' की वर्ष १९१६ की बात है, डॉ० विश्वेश्वरैया मैसूर सर्वोच्च उपाधिसे अलंकृत किया गया। - शिवकुमार गोयल राज्यके दीवान पदका दायित्व सँभाले हुए थे। एक बार (२) उन्हें सूचना मिली कि उनके एक निकट-सम्बन्धी नि:स्वार्थ परोपकार अचानक बीमार हो गये हैं। उन्हें बंगलौरके अस्पतालमें बात १५ मई २००७ ई० की है, हम दोनों पति-भर्ती कराया गया है। पत्नी स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें श्रीरामसुखदासजीका प्रवचन समय निकालकर उन्होंने अस्पताल पहुँचकर उन्हें सुननेहेतु गये थे। वहाँ गीता भवन नं० ३ में जानेके लिये देखनेका निश्चय किया। वे मैसूरसे राज्यकी सरकारी हमें गंगा पार करना था। इस हेतु नावमें बैठनेके लिये कारसे बंगलीर नहीं गये। बस स्टैण्ड गये तथा बसमें टिकट लेकर सीढ़ियोंसे होकर जाना था। वृद्धावस्था एवं सवार होकर बंगलौर जा पहुँचे। मैसूरके महाराजाको शारीरिक रूपसे कमजोर होनेके कारण १०-१५ सीढ़ी उनसे आवश्यक परामर्श लेना था। उन्होंने अपने पार करते ही मेरी पत्नी फिसलकर गिर गयी। गिरनेसे सचिवको उन्हें बुलाने भेजा। उसने सरकारी कार वहीं उसके घुटनेमें चोट लग गयी, जिससे खून बहने लग खड़ी देखी। कार्यालयके अन्दर जानेपर पता चला कि गया। मैं आगे-आगे चल रहा था, उसके गिरते ही मैं वे व्यक्तिगत कार्यसे जानेके कारण सरकारी कार वहीं रुका और पीछे मुड़कर देखा तो खून काफी निकल रहा छोड गये हैं। था। यह देखकर मैं घबरा-सा गया। मैं कुछ सोचता, महाराजाको जब इस बातका पता चला तो वे उनकी उससे पहले ही पीछेसे दो महिलाएँ आ रही थीं, उनमेंसे इस नैतिकताकी पराकाष्ठाको देखकर चिकत हो उठे। एकने हाथसे खुनको रोका और तुरंत अपनी नयी वर्ष १९१८में डॉ० विश्वेश्वरैया ५८ वर्षकी आयुके साड़ीका पल्लू फाड़कर डिटॉल लगाकर पट्टी बाँध दी। हुए। उन्होंने महाराजासे कहा—'मेरी आयु सेवानिवृत्तिकी में तो घबरा गया था, पर उन औरतोंने हाथ

भाग ९२ पकड़कर मेरी पत्नीको नावमें बिठाया। गंगा पार कराकर सेवाका काम नहीं किया है। इसलिये मेरे हाथ इतने वे स्वयं ही हाथठेली लेकर आ गयीं और उससे कोमल हैं।' गुरुजीने अधरोंतक लाये हुए जलपात्रको अस्पताल पहुँचाया। वहाँ डॉक्टरने टाँके लगाये एवं रख दिया और गम्भीर स्वरमें बोले—'भैया! जिन हाथोंने पट्टी करके दवाइयाँ लिख दीं। दवाइयाँ भी बाजारसे कभी सेवा नहीं की, वे पवित्र कैसे हुए? पवित्रता तो वही महिला लेकर आ गयी। तत्पश्चात् उसने हमको सेवासे प्राप्त होती है। मैं तुम्हारे हाथका जल नहीं पी गीता भवन पहुँचाया। बहुत पूछनेपर भी उसने दवाइयोंके सकता।' सम्भ्रान्त भक्त महाराजके मर्मको समझ गया पैसे नहीं बताये। पता नहीं, उस वक्त डिटॉल उनके पास और उसे अपने कर्तव्यका बोध हो गया। थी या मँगवायी, मेरे लिये तो यह वैसी ही घटना थी, (8) मौन शिक्षा जैसे द्रौपदीने भगवान् कृष्णकी अँगुलीमें चोट लगनेपर अपनी नयी साड़ी फाड़कर पट्टी बाँधी थी। उनके इस घटना उन दिनोंकी है जब लोकमान्य तिलक नि:स्वार्थ परोपकारके बदले भला मैं वृद्ध क्या कर वकालतका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये दादाभाई सकता हूँ। केवल भगवान्से प्रार्थना ही कर सकता हूँ नौरोजीके साथ रहते थे। नौरोजी मितव्ययी थे। जो धन कि भगवान् उनका भला करें। तथा समय अपनेसे बचता उसे वे देश-सेवामें लगाते। हम जहाँ ठहरे थे, वहाँ खाना भी अपने कमरेसे एक बार किसी मुकदमेके सिलसिलेमें दादाभाईको लेकर आतीं एवं मेरी पत्नीको सँभालती थीं। वे वानप्रस्थ इंग्लैण्ड जाना पड़ा, साथमें तिलक भी गये। नौरोजी मितव्ययिताकी दृष्टिसे लन्दनमें न ठहरकर थोड़ी दूर आश्रममें ठहरी थीं। उनमेंसे जिसने पट्टी बाँधी, उसका नाम कान्ता था। वह वृन्दावनकी थी, दूसरी उड़ीसाकी स्थित एक कस्बेमें ठहरे। नौरोजी बडे सबेरे उठते, घरकी सफाईसे लेकर कपड़ोंकी धुलाई तथा जूतोंकी पॉलिश थी। हमको सात दिनतक रुकना पड़ा। टाँके खुलनेपर ही डॉक्टरने छुट्टी दी। उस समय मेरी उम्र ७२ सालकी आदितक सब काम स्वयं अपने हाथोंसे कर लेते थे। थी। मुझसे इतनी भाग-दौड़ हो नहीं सकती थी, मगर एक दिन वे जूतोंकी पॉलिश कर रहे थे कि तिलक भगवान्ने उन दयालु महिलाओंको भेजा मेरा उनको जाग पडे। उन्हें देरसे जागनेकी आदत थी। नौरोजीको बहुत-बहुत आशीर्वाद है। मैं उनका एहसान कभी नहीं पॉलिश करते देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। वे बिस्तर भूल सकता, पर यह सोचता हूँ कि अगर इस प्रकारकी छोड़कर दौड़ उठे तथा नौरोजीसे जूते छीनने लगे और नि:स्वार्थ परोपकारी सेवावृत्ति सबमें आ जाय तो यह बोले—'क्या आज नौकर नहीं आया' जो आपको यह संसार कितना सुन्दर हो जाय!-मदनलाल जैथलिया काम करना पडा? 'नहीं, ऐसी बात नहीं है।' (3) 'पवित्रता तो सेवासे प्राप्त होती है' दादाभाईने उत्तर दिया। सिक्खोंके दशम गुरु गोविन्दसिंह आनन्दपुर साहेबमें तो फिर आप.....यह.....! विराजमान थे। उन्हें प्यासका अनुभव हुआ तो बोले— 'नहीं, मैं अपने जूते स्वयं ही साफ करता हूँ। 'कोई मुझे पवित्र हाथोंसे थोड़ा जल पिला दे।' इसपर अपने किसी कामके लिये मैं दूसरोंके आश्रित नहीं एक सम्भ्रान्त व्यक्ति उठा और जल ले आया। जलपात्र रहता।' नौरोजीने तिलकको समझाया। लेकर पीते समय गुरुजीका स्पर्श उस व्यक्तिके हाथसे हो इस घटनाका तिलकके मनपर बडा प्रभाव पडा। गया। वे बोले—'भैया, तुम्हारे हाथ इतने कोमल क्यों हैं ?' उन्हें उस दिन स्वावलम्बी बननेकी प्रेरणा और एक उत्तम वह अपनी प्रशंसा सुनकर बहुत खुश हुआ। मौन सीख मिली। मन-ही-मन उनका मस्तक दादाभाई बोला—'महाराज! मेरे अनेक सेवक हैं, मैंने स्वयं कोई नौरोजीके चरणोंमें नत हो गया।-शिवचरणसिंह चौहान

पढो, समझो और करो संख्या ४ ] (4) भाई'—दूकानदार बोला। 'इस प्रकार क्यों बोलते हैं सच्चे विश्वासका प्रभाव आप? मैं तो आपपर पूरा विश्वास करके ही दूकान गाँवके बाहर एक छोटी-सी किरानेकी दुकान थी। सौंपकर गया था, फिर देखने-सुननेकी बात ही कहाँ दुकानदारका स्वभाव इतना अच्छा था कि गाँवके सभी है।' लोग उसकी दूकानसे माल खरीदना चाहते थे। दूकानदार दूकानदारके मुखसे ऐसे आत्मीयताभरे शब्द सुनकर प्रभुभक्त था। रात्रिमें चौकमें बैठकर वह सुमधुर कण्ठसे डाकूका हृदय भर आया। उसने झुककर दुकानदारके चरणस्पर्श किये और अपना परिचय दिया। इतना ही नहीं, भजन गाता था। गाँवके लोग वहाँ आकर भजन सुनते थे तथा स्वयं भी प्रेमसे गाते थे। उसने प्रतिज्ञा की कि 'अब भविष्यमें कभी चोरी या डकैती जैसा लोगोंका विश्वास व्यापारीके ऊपर था, वैसा ही नहीं करूँगा। दृढ़ विश्वास व्यापारीका भी लोगोंके ऊपर था। दोपहरको एक अत्यन्त सामान्य व्यक्तिके ऊपर विश्वास भोजन करनेके लिये अपने घर जानेके समय वह दुकानदार करके उसके जीवनमें परिवर्तन लानेवाले दुकानदारका दुकानपर बैठे हुए किसी भी व्यक्तिको अपनी दुकान सौंपकर नाम था—'संत तुकाराम!' 'सुविचार'—उपेन्द्र पंचाल भोजन करने चला जाता था। यह उसका नित्यका क्रम बन गया था। एक दिन दोपहरके समय उसकी दुकानपर एक अपने घुटने कभी न बदलिये प्रसिद्ध डाकू आया और वहीं बैठ गया। कोई भी उसे [ घरेलू उपचार ] पहचानता नहीं था कि वह डाकू है। भोजनका समय होते ५० वर्षके बाद धीरे-धीरे शरीरके जोडोंमेंसे ही दूकानदारने उस डाकूको अपनी दूकान सौंप दी और लुब्रीकेन्ट्स एवं कैल्सियम बनना कम हो जाता है, जिससे जोड़ोंका दर्द, गैप, कैल्सियमकी कमी आदि स्वयं घर चला गया। उसके जानेके बाद वह डाकू दुकानपर तकलीफें सामने आती हैं, जिसके चलते आधुनिक बैठ गया और दुकानका लेन-देनका काम करने लगा। चिकित्सक आपको ज्वाइन्ट-रिप्लेसमेन्ट करवानेकी सलाह उस समय डाकूकी टोलीका एक आदमी कुछ खरीद करनेके लिये आया और दूकानपर अपने साथीको देते हैं। ही बैठा हुआ देखकर उसने कहा—'दोस्त! बहुत किंतु क्या आपको पता है जो चीज कुदरतने हमें अच्छा मौका मिला है, आज दोपहरके समयमें हाथ जिस रूपमें दी है उसे आधुनिक विज्ञान या कोई भी मारनेमें कोई मुश्किल नहीं। एक ही बारमें बेड़ा पार हो साइंस नहीं बना सकता है। ज्वाइन्ट-रिप्लेसमेन्टसे जायगा।' बचनेका एक अद्भुत उपाय यहाँ दिया जा रहा है-'तुम जल्दीसे चले जाओ यहाँसे!'—दूकानपर बैठे घुटनों एवं ज्वाइन्ट्सके दर्दका उपाय हुए डाकूने लाल आँखें करके कहा। 'ऐसा विश्वासघात बबुल (देशी) नामके वृक्षको आपने जरूर देखा होगा, बबूलके वृक्षमें बीजसिंहत फली आती है, उसको करनेसे तो हमारा सर्वनाश हो जायगा। यदि इस समय दुकानके प्रति तुम कुदुष्टि डालोगे तो तुम्हारी खैर नहीं।' तोड़कर लेकर आयें और उसे सुखाकर पाउडर बना अपने साथीसे इस प्रकारका उत्तर पाकर वह व्यक्ति चुप लें। सुबह १ चम्मचकी मात्रामें गुनगुने पानीसे (भोजनके हो गया और अपनी आवश्यकताकी वस्तु खरीदकर पश्चात्) केवल २-३ महीनेतक सेवन करनेसे आपके घुटनेका दर्द बिलकुल ठीक हो जायगा और आपको चुपचाप लौट गया। थोड़ी देरमें भोजन करके दूकानदार लौट आया। दूकान सँभाले हुए डाकूने खड़े होकर घुटने बदलनेकी जरूरत ही नहीं पडेगी। कहा—'महाशय! सँभालिये अपनी यह दूकान और गिन **—डॉ० पवनकुमार** [सम्पर्क : ०७८३८०३७०३०] लीजिये पैसे; कोई हेर-फेर तो नहीं हुआ?' 'अरे [ प्रेषक—सत्यनारायण सामरिया ]

परोपकार महान् धर्म

जगज्जननी जानकीका हरण करनेके लिये दुरात्मा प्रतीक्षा करते जटायु अन्तिम स्थितिमें मृत्युके क्षण गिन

रावणने मारीचको माया-मृग बननेके लिये बाध्य किया। रहे थे। मर्यादापुरुषोत्तमको उन्होंने विदेह-नन्दिनीका

मायासे स्वर्ण-मृग बने मारीचका आखेट करने धनुष लेकर श्रीराम उसके पीछे गये। वह उन्हें दूर वनमें ले

गया और अन्तमें जब उनके बाणसे मरा, तब मरते-मरते

भी 'हाय लक्ष्मण!' पुकारकर उसने छल किया। उस आर्तस्वरको सुनकर श्रीजानकीजी व्याकुल हो गयीं।

उनके आग्रहसे लक्ष्मणजीको अपने ज्येष्ठ भ्राताका पता लगाने वनमें जाना पडा। पंचवटीमें श्रीवैदेहीजी को

अकेली देखकर रावण वहाँ आया और उसने बलपूर्वक उन जनककुमारीको रथमें बैठा लिया। श्रीसीताजीको रथमें बैठाकर राक्षसराज रावण शीघ्रतासे भागा जा रहा था। श्रीमैथिली आर्त-क्रन्दन

कर रही थीं। उनकी वह आर्त-क्रन्दन-ध्विन पिक्षराज जटायुने भी सुनी। जटायु वृद्ध थे; उनको पता था कि रावण विश्वविजयी है, अत्यन्त क्रूर है और ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे अजेयप्राय है। जटायु समझते थे कि वे न रावणको मार सकते हैं न पराजित कर सकते हैं। श्रीजनकनन्दिनीको वे छुड़ा सकेंगे उस क्रूर राक्षससे, इसकी कोई आशा न उन्हें

थी, और न हो सकती थी। उलटे रावणका विरोध

करनेपर मृत्यु निश्चित थी। परंतु सफलता-विफलतामें चित्तको समान रखकर प्राणीको अपने कर्तव्यका दुढतासे पालन करना चाहिये। यही जटायुने किया। वे पूरे वेगसे रावणपर टूट पड़े। उसका रथ अपने आघातोंसे तोड़ डाला। अपने पंजों तथा चोंचकी मारसे रावणके शरीरको नोच डाला। पर अन्तमें रावणने तलवार

निकालकर उनके पंख काट दिये। जटायु भूमिपर गिर पड़े। रावण श्रीजानकीजीको लेकर आकाशमार्गसे चला गया।

जब मारीचको मारकर श्रीराम लौटे, लक्ष्मण उन्हें मार्गमें ही मिल गये। कुटियामें श्रीजानकीको न देखकर वे व्याकुल हो गये। नाना प्रकारका विलाप करते हुए

समाचार दिया। उस दिन श्रीराघवेन्द्रने नरनाट्य त्यागकर कहा—'तात! आप अपने शरीरको रखें! मैं आपको अभी स्वस्थ कर दुँगा।'

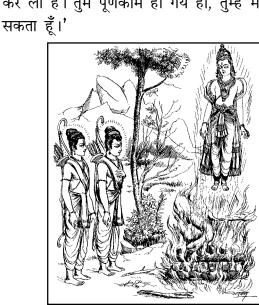
जटायु इसे कैसे स्वीकार कर लेते। श्रीराम सम्मुख खड़े हों, मृत्युके लिये ऐसा सौभाग्यशाली क्षण क्या

बार-बार प्राप्त होता है ? वे त्रिभुवनके स्वामी जटायुको गोदमें लेकर अपनी जटाओंसे उनके रक्तमें सने शरीरकी धूलि पोंछ रहे थे, उन्हें अपने अश्रुओंसे स्नान करा रहे थे। वे अनुभव कर रहे थे कि सर्वसमर्थ होनेपर भी वे

श्रीराघवेन्द्रने कहा—

तात कर्म निज तें गति पाई॥ परहित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।। 'जटायु! तुमने तो अपने कर्मसे ही परमगति प्राप्त कर ली है। तुम पूर्णकाम हो गये हो, तुम्हें मैं क्या दे

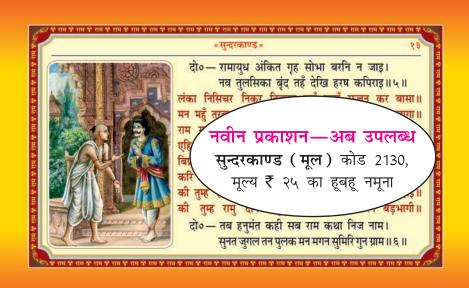
जटायुको कुछ नहीं दे सकते। नेत्रोंमें अश्रु भरकर उन



शरीर त्यागकर जटायु जब चतुर्भुज दिव्य भगवत्पार्षद देहसे वैकुण्ठ चले गये, तब श्रीरामने अपने हाथों उनके उस गीधदेहका बड़े सम्मानपूर्वक अग्नि-संस्कार किया।

ਕੈਵੇਜ਼ੀਰੀuiङ्कितेDहोटोंorਰਾईeਰਪਏr निस्किs गार्वहेंc. ਤੁਰੁਰੀ harma । MADE WITL ਸੰਦਿਲ ਦਾ ਇਲਾਪ ਆਨਤਜ਼ਾਤ ਜੋ

# नवीन प्रकाशन



## गीताप्रेस वेब www.gitapress.org पर मुफ्त उपलब्ध पुस्तकें

## अन्य पुस्तकें भी शीघ्र उपलब्ध कराने का प्रयास है

कोड   पुस्तक-नाम   अंग्रेजी   176   शिखा ( जोटी ) धारणकी आवश्यकता   738   तुमत्-स्तोत्रावली   738   तुमत्-स्तोत्रावली   738   तुमत्-स्तोत्रावली   738   तृमत्-स्तोत्रावली   738   तृमत्-सतोत्रावली   738   तृमत्-सतोत्रावली   738   तृमत्-सतोत्रावली   738   तृमत्-सतोत्रावली   738   तृमत्-सत्तेत्र वृम्यान्यालीसा (तृष्टु आकार)   738   तृमत्-स्त्रयन्ते   738   तृमत्-स्त्रयन्ते   738   तृमत्-स्त्रयन्ते   738   तृमत्-स्त्रयन्ते   738   तृमत्-सत्तेत्र   738   तृमत्-स्त्रयन्ते   738   तृमत्-सत्तेत्र   738   तृमत्न-सत्तेत्र   738   तृमत्-सत्तेत्र   738   तृमत्न-सत्तेत्र   738   तृमत्न-सत्तेत्तेत्तेत्तेत्तेत्तेत्तेत	of a 3/1/ar in this office artiful an artiful						
1528   Sri Hanumānacālisā   [With Hindi Text and English Translation]	कोड	पुस्तक-नाम	कोड	पुस्तक-नाम	कोड	पुस्तक-नाम	
[With Hindi Text and English Translation]   948   सुन्दरकाण्ड (गूल) मोटा टाइप   842 श्रीलिलातासहस्रनामस्तोत्रम्   1941   श्रीशिवसहस्रनामसतोत्र (जामावलीसहित)   1941   श्रीशिवसहस्रनामसतोत्र (जामावलीसहित)   1941   श्रीशिवसहस्रनामसतोत्र (जामावलीसहित)   1941   श्रीशिवसहस्रनामसतोत्र (जामावलीसहित)   1952   अत्वत्र केसे हो?   1788   श्रीमुक्त प्रवाद   1789   तिरुप्पाले विलयक्ष चेतावनी   1789   तिरुप्पाले विलयक्ष चेतावनी   1790   1		अंग्रेजी	1176	शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता		कन्नड़ ====	
1948   सुन्दरकाण्ड (मूल) मोटा टाइप   1948   सुन्दरकाण्ड (मूल) मोटा टाइप   1941   श्रीणियसहस्त्रनामस्तोत्र (नामावलीसहित)   1941   श्रीणियसहस्त्रनामसतोत्र (नामावलीसहित)   1942   श्रीप्त्रनाम (मूल)   1943   श्रीहरपाठ (मूल)   1945   श्रीहरपावद्गीता (सटीक)   1945   श्रीहरपाठ (मूल)   1945	1528	Śrī Hanumānacālīsā	1283		738		
1945   1945   1946   1947   1946   1947   1948   1948   1948   1948   1949		[With Hindi Text and English		गुजराती	736	नित्यस्तुति एवं आदित्यहृदयस्तोत्रम्	
Text and English Translation   1941 श्रीशिवसहस्रनामस्तीत्र (नामावलीसहित)   1941 श्रीशिवसहस्रनाम (नामावलीसहित)   1941 श्रीस्त्रमाती (नामावलीसहित)   1941 श्रीस्त्रमाती (नामावलीसहित)   1942 श्रीम्हम्पत्रमाती (नामावलीसहित)   1943 श्रीस्त्रमाती (नामावलीसहित)   1944 श्रीस्त्रमाती (नामावलीसहित)   1948 श्रीम्हम्पत्तीत्र (नामावलीसा (अर्थसहित)   1948 स्त्राम्यान्तीत्र (नामावलीसा (अर्थसहित)   1948 श्रीस्त्रमात्तीत्र (नामावलीसा (अर्थसहित)   1948 श्रीस्त्रमात्तीत्र (नामावलीसा (अर्थसहित)   1948 स्त्रामावलीसा (अर्थसहित)   1948 स्त्रामावलीसा (अर्थसहित)   1948 स्त्रामावलीसा (अर्थसहित)   1948 स्त्रामावलीसा (अर्थसहित)   1948 श्रीस्त्रमावलीसा (अर्थसहित)   1948 स्त्रामावलीसा (अर्थसहित)   1948 श्रीस्त्रमावलीसा (अर्थसहित)   1948 स्त्रामावलीसा (अर्थसह		Translation]	948		842	श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम्	
1318   Sri Rāmacaritamānasa [With Hindi Text and English Translation]   931 उद्धार कैसे हो ?   1788   श्रीमुरुगन् तृदिमाले   1789   तिरुप्यां विलावकम्   1789   तिरुप्यां विलावनम्   1891   श्रीद्यां विलावम्   1891   श्रीद्यां विलावम्   1891   श्रीद्यां विलावम्यां   1891   श्रीद्यां विलावम्यां   1891   श्रीद्यां विलावम्   1891   श्रीद्यां विलावम्   1891   श्रीद्यां विलावम्यां विलावम्यां विल	0455	THE BHAGAVADGĪTĀ [With Sanskrit	1198		721		
Text and English Translation   931 उद्धार कैसे हो ?   1788 श्रीमुरुगन् तुदिमालै   1789 तिरुपावै विलक्कम्   1885 श्रीहित्पावै विलक्कम्   1891 श्रीहर्त्वामं विष्टावि विलक्कम्   1892 तिरुपावै विलक्कम्   1892 तिरुपावै विलक्कम्   1892 तिरुपावै विलक्कम्   1892 तिरुपावै विलक्कम्   1893 श्रीहित्पावै विलक्कम्   1894 तिरुपावै विलक्कम्   1895 श्रीहित्पावै विलक्कम्   1895 श्रीहत्वा ति तिरुपावै विलक्कम्   1895 श्रीहत्वा ते तिल्य विष्टावै विलक्कम्   1895 श्रीहत्वा ते तिल्य विष्टावै विलक्कम्   1895 श्रीहत्वा तिलक्वम्   1895 श्रीहत्वा तिलक्वमं   1895 श्रीहत्वा तिल्य विष्टावै विष्टावै विष्टावै विष्टावै विलक्वमं   1895 श्रीहत्वा तिलक्वमं   1895 श्रीहत्वा तिल्य विष्टावै विष्टावै विलक्वमं   1895 श्रीहत्वा तिलक्वमं   1895 श्रीहत्वा तिलक्वमं   1895 श्रीहत्वा तिल्य विष्टावि विष्टावि विष्यावि विष्टावि विलक्वमं   1895 श्रीहत्वा तिलक्वमं   1895 श्रीहत्वा तिल्य विष्टावे विष्टावे तिलक्वमं   1895 श्रीहत्वा तिलक्वमं   1895 श्रीहत्वा तिल्य विष्टावे   1895 श्रीहत्वा तिलक्वमं   1895 श्रीहत्वा तिल्य विष्टावे तिल्य विष्टाव		Text and English Translation]	1941	<b>श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्र</b> (नामावलीसहित)	836	नल-दमयन्ती	
1789   तिरुपां विलवकम्   1789   तिरुपां विलवकम्   792 आवश्यक चेतावनी   1855   श्रीहरिपाठ (मूल)   1912 व्रत-कल्पत्रयम्   1916 श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)   1815 घराघरातील संस्कार कथा   श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)   1815 घराघरातील संस्कार कथा   श्रीहनुमानचालीसा   1750 सत्त जगनाथदासकृत   श्रीमद्भगवद्गिता—स्वाच   1806 श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1750 सत्त जगनाथदासकृत   श्रीमद्भगवत-एकादश स्कन्ध   1807 पंचसूक्तमुलु-रुद्रमु   1078 भगवत्प्रातिक विवध उपाय   1807 श्रीमद्भगवद्गीता—स्विक   1759 वासुदेवःसर्वम्   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1759 वासुदेवःसर्वम्   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1807 पंजाबी   1616 पृहस्थमें कैसे रहें ?   1807 सत्तवमाला   1807 सत्तवमाला   1807 स्तवमाला   1807 स्तवमाला   1807 सत्तवमाला   1807 स्तवमाला   1807 सत्तवमाला   1807 सत्तवमालाला   1807 सत्तवमाला   1807 स	1318	Śrī Rāmacaritamānasa [With Hindi	1052	•			
18 श्रीहरिपाठ (मूल)   1912 व्रत-कल्पत्रयम्   1912 व्रत-कल्पत्रयम्   1912 व्रत-कल्पत्रयम्   1913 व्रत-कल्पत्रयम्   1914 व्रत-कल्पत्रयम्   1915 व्रत-कल्पत्रयम्   1916 श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)   1815 घराघरातील संस्कार कथा   1916 श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)   226 श्रीविष्णुसहस्रनाम (मूल)   1815 घराघरातील संस्कार कथा   3ोड़िआ   3ोड़		Text and English Translation]	931		1788		
18 शीदुर्गासप्तरशती (सटीक)   1640 सार्थ मनाचे श्लोक   1912 व्रत-कल्पत्रयम्   1815 प्राचरतील संस्कार कथा   1916 श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)   1815 घराघरातील संस्कार कथा   3ñदुआ   856 श्रीहनुमानचालीसा   1916 श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)   1815 घराघरातील संस्कार कथा   3ñदुआ   856 श्रीहनुमानचालीसा   1916 श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)   1815 घराघरातील संस्कार कथा   3ñदुआ   856 श्रीहनुमानचालीसा   1750 सन्त जगन्नाथदासकृत   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तोत्रावली   1750 सन्त जगन्नाथदासकृत   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तेत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तेत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तेत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तेत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तेत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तेत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806 श्रीवंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806 श्रीवंकटेश   1806 श्रीव	2001				1789		
118 श्रीदुर्गासप्तशती (सटीक)   1640 सार्थ मनाचे श्लोक   1916 श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)   1779 सल्कर्माची गोड फले   1916 श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)   1815 घराघरातील संस्कार कथा   3ोडिआ   856 श्रीहनुमानचालीसा   1750 सन्त जगनाथदासकृत श्रीमद्भगवत-एकादश स्कन्ध   1849 सुन्दरकाण्ड (सटीक) मोटा टाइप   1806 श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1750 सन्त जगनाथदासकृत श्रीमद्भगवत-एकादश स्कन्ध   1806 श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1750 सन्त जगनाथदासकृत श्रीमद्भगवत-एकादश स्कन्ध   1806 श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806 श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806 श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1251 भवरोगकी रामबाण दवा   1806 श्रीनामरामायणम् एवं हनुमानचालीसा   1251 भवरोगकी रामबाण दवा   1807 भगवत्प्राप्तिक तिबिध उपाय   1807 भगवत्प्राप्तिक तिबध उपाय   1808 भगवत्प्राप्तिक तिबध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तेविध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तेविध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तेविध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तेविध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तेविध उपाय   1809 भगवत्प्राप्तिक तिवध उपाय   1809 भगवत्प्राप्त		हिन्दी —	855		792	आवश्यक चेतावनी	
1779   सत्कर्माची गोंड फले   1916   श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)   226   श्रीविष्णुसहस्रनाम (मूल)   1815   घराघरातील संस्कार कथा   3ोडिआ   856   श्रीहनुमानचालीसा   1750   सन्त जगनाथदासकृत   1806   श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806   श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1750   श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक )   1815   घराघरातील संस्कार कथा   3ोडिआ   856   श्रीहनुमानचालीसा   1750   सन्त जगनाथदासकृत   श्रीमद्भगवद-एकादश स्कन्ध   1806   श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1807   श्रीवेंकटेश्वरस्तावली   1807   श्रीवेंकटेश्वरस्तावली   1807   श्रीवेंकटेश्वरस्तावली   1807   श्रीवेंकटेश्वरस्तावली   1807   श	6		859		1912	व्रत-कल्पत्रयम्	
1815   घराघरातील संस्कार कथा   3तेलुगु   856   श्रीहनुमानचालीसा   973   श्रिवस्तोत्रावली   1750   सन्त जगनाथदासकृत   श्रीमद्भागवत-एकादश स्कन्ध   1815   घराघरातील संस्कार कथा   3तेलुगु   856   श्रीहनुमानचालीसा   1750   सन्त जगनाथदासकृत   श्रीमद्भागवत-एकादश स्कन्ध   1349   सुन्दरकाण्ड (सटीक) मोटा टाइप   1502   श्रीनामरामायणम् एवं हनुमानचालीसा   1251   भवरोगकी रामबाण दवा   1919   सुन्दरकाण्ड (मूल) विशिष्ट संस्करण   1026   पंचमूक्तमुलु-रुद्रमु   1078   भगवत्याप्तिके विविध उपाय   1818   श्रीमद्भगवद्गीता—सटीक   759   शरणागित एवं मुकुन्दमाला   1564   महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1759   वासुदेव:सर्वम्   1564   महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1759   वासुदेव:सर्वम्   1564   महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1759	118	<mark>श्रीदुर्गासप्तशती</mark> (सटीक)	1640				
229 श्रीनारायणकवच   तेलुगु   856 श्रीहनुमानचालीसा   1750 सन्त जगनाथदासकृत   श्रीरामरक्षास्तोत्र   1806 श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1750 सन्त जगनाथदासकृत   श्रीमद्भागवत-एकादश स्कन्ध   1349 सुन्दरकाण्ड (सटीक) मोटा टाइप   1502 श्रीनामरामायणम् एवं हनुमानचालीसा   1251 भवरोगकी रामबाण दवा   1919 सुन्दरकाण्ड (मूल) विशिष्ट संस्करण   1026 पंचसूक्तमुलु-रुद्रमु   1078 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय   188 श्रीमद्भगवद्गीता—सटीक   1759 वासुदेवःसर्वम्   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1759 वासुदेवःसर्वम्   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1759 वासुदेवःसर्वम्   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1759 भजन-संकीर्तनावली   1616 गृहस्थमें केसे रहें ?   1881 हनुमानचालीसा (अर्थसिहत)   1616 गृहस्थमें केसे रहें ?   1881 हनुमानचालीसा (अर्थसिहत)   1797 स्तवमाला   302 ध्यान और मानसिक पूजा   1797 स्तवमाला   1797 स्तवमाला   3र्दू   1797 स्तवमाला   1797 स	225	गजेन्द्रमोक्ष	1779		1916		
231 श्रीरामरक्षास्तोत्र   973 शिवस्तोत्रावली   1750 सन्त जगन्नाथदासकृत   973 शिवस्तोत्रावली   1806 श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1806 श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   1251 भवरोगकी रामबाण दवा   1919 सुन्दरकाण्ड (मूल) विशिष्ट संस्करण   1026 पंचसूक्तमुलु-रुद्रमु   1078 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय   18 श्रीमद्भगवद्गीता—सटीक   759 शरणागित एवं मुकुन्दमाला   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1759 वासुदेवःसर्वम्   1616 गृहस्थमें कैसे रहें ?   1881 हनुमानचालीसा (अर्थसहित)   1616 गृहस्थमें कैसे रहें ?   1881 हनुमानचालीसा (अर्थसहित)   1797 स्तवमाला   354   354   354   354   354   355   3	226	<mark>श्रीविष्णुसहस्रनाम (मूल)</mark>	1815			ओड़िआ ———	
1806 श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली   श्रीमद्भागवत-एकादश स्कन्ध   1349 सुन्दरकाण्ड (सटीक) मोटा टाइप   1502 श्रीनामरामायणम् एवं हनुमानचालीसा   1251 भवरोगकी रामबाण दवा   1919 सुन्दरकाण्ड (मूल) विशिष्ट संस्करण   1026 पंचसूक्तमुलु-रुद्रमु   1078 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय   1822 गोरक्षा एवं गोसंवर्धन   1759 वासुदेवःसर्वम्   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1938 गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ   907 प्रेम-भिक्तिका प्रकाश   703 गीता पढ़नेसे लाभ   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1759 वासुदेवःसर्वम्   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1759 वासुदेवःसर्वम्   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1616 गृहस्थमें कैसे रहें ?   1881 हनुमानचालीसा (अर्थसहित)   1616 गृहस्थमें कैसे रहें ?   1881 हनुमानचालीसा (अर्थसहित)   1797 स्तवमाला   354   354   354   354   355   35	229	श्रीनारायणकवच		तेलुगु	856	श्रीहनुमानचालीसा	
1349 सुन्दरकाण्ड (सटीक) मोटा टाइप   1502 श्रीनामरामायणम् एवं हनुमानचालीसा   1251 भवरोगकी रामबाण दवा   1019 सुन्दरकाण्ड (मूल) विशिष्ट संस्करण   1026 पंचसूक्तमुलु-रुद्रमु   1078 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय   1078 भगवत्प्राप्तिके विवध उपाय   1078 भगवत्यक्तिके विवध उपाय   1078 भगवत्प्राप्तिके विवध उपाय	231	•	973		1750	सन्त जगन्नाथदासकृत	
1919 सुन्दरकाण्ड (मूल) विशिष्ट संस्करण   1026 पंचसूक्तमुलु-रुद्रमु   1078 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय   18 श्रीमद्भगवद्गीता—सटीक   759 शरणागित एवं मुकुन्दमाला   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1938 गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ   907 प्रेम-भिक्तका प्रकाश   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1311 परलोक और पुनर्जन्म (एवं वैराग्य)   1029 भजन-संकीर्तनावली   1616 गृहस्थमें कैसे रहें ?   1881 हनुमानचालीसा (अर्थसहित)   1616 गृहस्थमें कैसे रहें ?   1881 हनुमानचालीसा (अर्थसहित)   1748 सन्तानगोपालस्तोत्र   1659 श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम   2046 हनुमानचालीसा   3र्दू   1797 स्तवमाला	563	<mark>श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्र</mark>	1806				
18       श्रीमद्भगवद्गीता—सटीक       759       शरणागित एवं मुकुन्दमाला       असिया         1922       गोरक्षा एवं गोसंवर्धन       1759       वासुदेव:सर्वम्       1564       महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव         1938       गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ       907       प्रेम-भिक्तका प्रकाश       703       गीता पढ़नेसे लाभ         311       परलोक और पुनर्जन्म (एवं वैराग्य)       1029       भजन-संकीर्तनावली       पंजाबी       पंजाबी         366       मानव-धर्म       बँगला       1616       गृहस्थमें कैसे रहें ?         632       सब जग ईश्वररूप है       1881       हनुमानचालीसा (अर्थसिहत)       नेपाली         1748       सन्तानगोपालस्तोत्र       1659       श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम       2046       हनुमानचालीसा         302       ध्यान और मानसिक पूजा       1797       स्तवमाला       उर्दू	1349		1502	श्रीनामरामायणम् एवं हनुमानचालीसा	1251		
1922 गोरक्षा एवं गोसंबर्धन   1759 वासुदेव:सर्वम्   1564 महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव   1938 गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ   907 प्रेम-भिक्तका प्रकाश   703 गीता पढ़नेसे लाभ   1029 भजन-संकीर्तनावली   1616 गृहस्थमें कैसे रहें ?   1881 हनुमानचालीसा (अर्थसिहत)   1748 सन्तानगोपालस्तोत्र   1659 श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम   2046 हनुमानचालीसा   302 ध्यान और मानसिक पूजा   1797 स्तवमाला	1919		1026		1078		
1938   गीता-माहात्स्यकी कहानियाँ   907   प्रेम-भिक्तका प्रकाश   703   गीता पढ़नेसे लाभ     311   परलोक और पुनर्जन्म (एवं वैराग्य)   1029   भजन-संकीर्तनावली	18		759				
311 परलोक और पुनर्जन्म (एवं वैराग्य)   1029 भजन-संकीर्तनावली   1616 गृहस्थमें कैसे रहें ?   1881 हनुमानचालीसा (अर्थसहित)   1748 सन्तानगोपालस्तोत्र   1659 श्रीश्रीकृष्णोर अष्टोत्तरशतनाम   2046 हनुमानचालीसा   302 ध्यान और मानसिक पूजा   1797 स्तवमाला	1922		1759		1564		
366     मानव-धर्म       632     सब जग ईश्वररूप है       1748     सन्तानगोपालस्तोत्र       302     ध्यान और मानसिक पूजा         1797       स्तवमाला         1616     गृहस्थमें कैसे रहें ?       नेपाली       2046     हनुमानचालीसा       302     ध्यान और मानसिक पूजा       1797     स्तवमाला	1938		907		703		
632     सब जग ईश्वररूप है     1881     हनुमानचालीसा (अर्थसिहत)     नेपाली       1748     सन्तानगोपालस्तोत्र     1659     श्रीश्रीकृष्णोर अष्टोत्तरशतनाम     2046     हनुमानचालीसा       302     ध्यान और मानसिक पूजा     1797     स्तवमाला     उर्दू	311	परलोक और पुनर्जन्म (एवं वैराग्य)	1029				
1748     सन्तानगोपालस्तोत्र     1659     श्रीश्रीकृष्णोर अघ्टोत्तरशतनाम     2046     हनुमानचालीसा       302     ध्यान और मानसिक पूजा     1797     स्तवमाला     उर्दू	366				1616	-	
302     ध्यान और मानिसक पूजा     1797     स्तवमाला     उर्दू	632		1881			नेपाली —	
	1748		1659	श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम	2046		
	302		1797			उर्दू =====	
729 सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण 1853 आमदेर लक्ष्य एवं कर्तव्य 1446 गीता केवल भाषा	729	सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण	1853	आमदेर लक्ष्य एवं कर्तव्य	1446	गीता केवल भाषा	



## नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

सरल गीता (कोड 2099)-हिन्दी अनुवाद और (कोड 2128) अंग्रेजी अनुवाद प्रत्येकका मूल्य ₹३५

सरल गीता क्यों ?—हमारे समाजमें ऐसे बहुत-से पाठक हैं जो संस्कृतका ज्ञान न होनेके कारण गीताजीके श्लोकोंका शुद्ध पाठ नहीं कर पाते हैं। हमारी भावना और प्रयास उन सभी महानुभावोंके लिये है जो गीता पढ़ना चाहते हैं। इसी सद्भावनासे प्रेरित होकर भगवान्की अहैतुकी कृपासे यह 'सरल गीता' तैयार की गयी है।

गीताजीका सही उच्चारण सीखनेवाले सामान्य पाठकोंकी सुविधाके लिये प्रत्येक चरणके कठिन शब्दोंको सामासिक चिह्नोंसे अलग करके दो रंगोंमें छापा गया है। इससे श्लोकके प्रत्येक चरणको समझनेमें सहायता मिलेगी।

### श्लोकका नमूना

आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता॥७॥ नैव किञ्चित् करोमीति, युक्तो मन्येत तत्त्व-वित्। पश्यञ्-शृण्वन्-स्पृशञ्-जिघ्नन्- नश्नन्-गच्छन्-स्वपञ्-श्वसन्॥८॥ प्रलपन्-विसृजन्-गृहणन्,-नुन्मिषन्-निमिषन्-निप। इन्द्रिया-णीन्द्रियार्थेषु, वर्तन्त इति धारयन्॥९॥ तत्त्वको जाननेवाला सांख्ययोगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ,

### आवश्यक सूचना

- 1. पाठकोंसे निवेदन है कि पुस्तक अथवा कल्याण मँगवानेके लिये जो धनराशि आप बैंक अथवा पोस्ट ऑफिसके माध्यमसे भेजते हैं, उसकी सूचना ई-मेल अथवा पत्रके माध्यमसे गीताप्रेस, गोरखपुरको पत्राचारके पूरे पते मोबाइल नम्बरके साथ अवश्य भेज दिया करें क्योंकि बैंक तथा पोस्ट आफिससे पूरा पता नहीं मिल पाता है। पूर्ण पतेके अभावमें आप द्वारा भेजी गयी धनराशिका निस्तारण नहीं हो पाता है। अगर ६० दिनोंके अन्दर आपको कोई समुचित उत्तर न मिले तो दुबारा अवश्य सूचित करें। ऐसी पुरानी कुछ धनराशि पूरे पते व मोबाइल नम्बरके अभावमें हमारे यहाँ जमा हैं जिसका निस्तारण प्रमाण मिलनेपर कर दिया जा रहा है।
- 2. कल्याणके पाठकोंकी शिकायतोंके शीघ्र समाधानके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन 09235400242/09235400244 उपलब्ध हैं। कृपया केवल इन्हीं नम्बरों पर ही प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9 बजेसे 12 बजेतक एवं 1.30 बजेसे 4.30 बजेतक सम्पर्क करें अथवा kalyan@gitapress.org पर e-mail भेज सकते हैं। इसके अतिरिक्त नं० 9648916010 पर SMS एवं WhatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।
- 3. कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये सन् २०१८ के लिये वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹ २५० के अतिरिक्त ₹ २०० देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है।
  - 4. कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ सकते हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)